I.S.S.N. 0971-9024

अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

वर्ष - 12, अंक - 4 अक्टूबर - दिसम्बर 2000

Vol.-12, Issue-4 October-December 2000

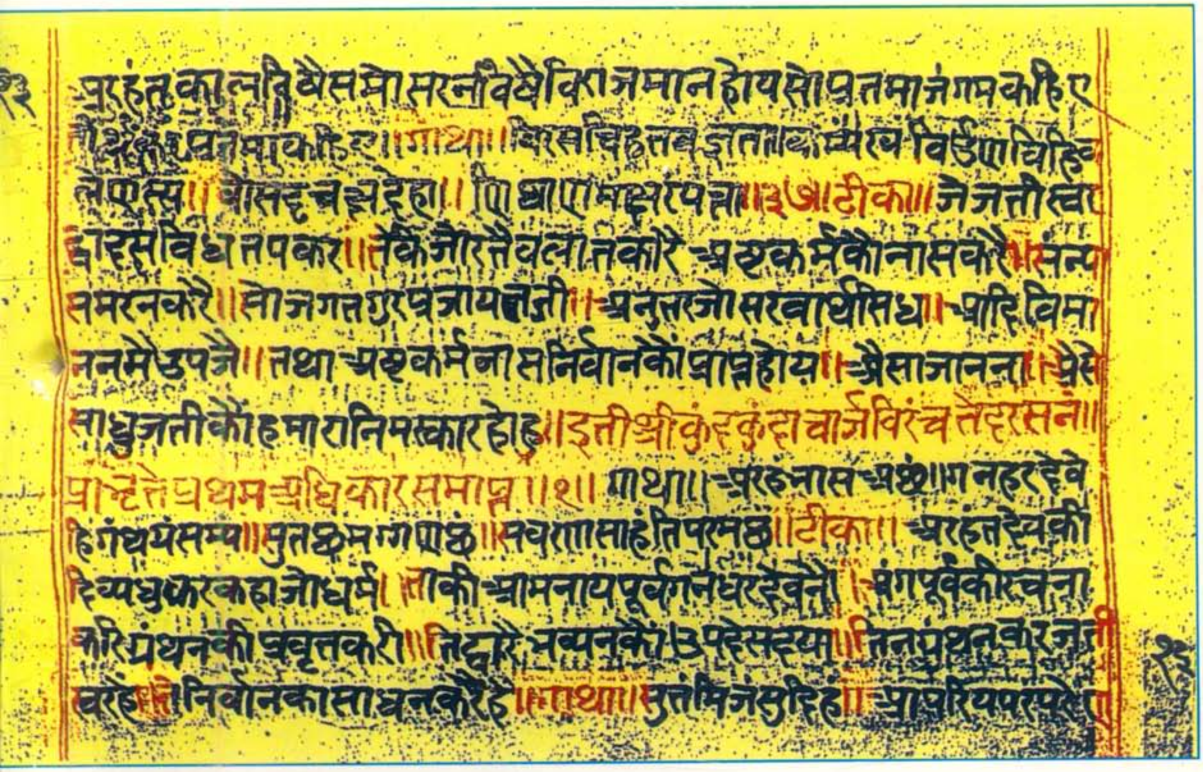

आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित श्रुत भण्डार, खजुराहो में संग्रहीत
अष्टपाहुड की (अप्रकाशित टीका) की पांडुलिपि का एक पृष्ठ

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪṬHA, INDORE

श्रीमती कुसुमकुमारी देवी कासलीवाल के निधन से अपूरणीय क्षति

देश की जैन समाज के सर्वप्रमुख नेता तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल की धर्मपत्नी एवं श्री अजीतकुमारसिंह तथा प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल (राष्ट्रीय अध्यक्ष - दिगम्बर जैन महासमिति) की पूज्य मातुश्री **श्रीमती कुसुमकुमारी देवी कासलीवाल** का निधन 27.8.2000 को सायं 7 बजे हो गया। इस हृदय विदारक समाचार से देश की सम्पूर्ण जैन समाज में शोक की लहर व्याप्त हो गई। उनकी अंत्येष्टि दिनांक 28.8.2000 को मध्यान्ह 1.30 बजे उनके पारिवारिक प्रतिष्ठान कस्तूर टाकीज, धार रोड़, इन्दौर के प्रांगण में नगर के प्रमुख समाजसेवियों तथा अनेकों राष्ट्रीय संस्थाओं के पदाधिकारियों की उपस्थिति में सम्पन्न हुई।

ज्ञातव्य है कि श्रीमती कुसुमकुमारी देवी कासलीवाल देव - शास्त्र - गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धावान रहकर जीवनपर्यन्त धार्मिक क्रियाओं, व्रत - उपवासादि में विशेष रूचि रखती रहीं। उन्होंने अनेकश: अष्टान्हिका 8 के एवं दशलक्षण के 10 उपवास किये। अपने भरे - पूरे परिवार को तो उन्होंने प्रशस्त संस्कार दिये ही, अन्य परिवारों की बहू - बेटियों को भी वे धार्मिक क्रियाओं हेतु प्रेरित करती रहीं।

दिगम्बर जैन महासमिति द्वारा संचालित महिला गृह उद्योग के माध्यम से महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने, गरीब एवं निर्धन महिलाओं को सब प्रकार की मदद पहुँचाने में उनकी विशेष भूमिका जीवन पर्यन्त रही।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की समस्त गतिविधियों में उनकी विशेष अभिरूचि थी। वे परोक्ष रूप से इनका सतत समर्थन करती रहती थीं। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर परिवार के सभी सदस्यों को आपको मातृवत वात्सल्य प्राप्त था।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय में 28.3.2000 को आयोजित सभा में ज्ञानपीठ परिवार एवं दि. जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर के सदस्यों ने उनको विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की।

डॉ. अनुपम जैन

I.S.S.N. - 0971-9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 12, अंक 4 — **अक्टूबर – दिसम्बर 2000**
Volume 12, Issue 4 — **October - December 2000**

मानद - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Autonomous Holkar Science College,
INDORE - 452017 INDIA

☎ (0731) 464074 (का.) 787790 (नि.), 545421 (ज्ञानपीठ) □ फैक्स : 0731 - 787790
E.mail : Kundkund@bom4.vsnl.net.in

❖ ❖ ❖

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapītha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

सम्पादक मंडल / Editorial Board
1999 से 2000

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य
दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
554, सराफा,
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics & Principal
Upstairs Diksha Jewellers.
554, Sarafa,
Jabalpur - 482 002

प्रो. कैलाश चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
प्रा. - भा. इ. सं. एवं पुरातत्व विभाग,
विक्रम वि. वि., उज्जैन,
मोहन निवास, देवास रोड़,
उज्जैन - 456 006

Prof. Kailash Chandra Jain
Retd. Prof. & Head,
A.I.H.C. & Arch. Dept.,
Vikram University, Ujjain,
Mohan Niwas, Dewas Road,
Ujjain - 456 006

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
आर - 20, रसबहार कालोनी,
लहरगिर्द,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Gaṇita Bhāratī,
R - 20, Rasbahar Colony,
Lehargird,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
प्राध्यापक - रसायन भौतिकी समूह,
ओक्लाहोमा स्टेट वि.वि.,
स्टिलवाटर OK 74078 USA

Prof. Parasmal Agrawal
Chemical Physics Group, Department of
Chemistry, Oklohoma State University,
Stillwater OK 74078 USA

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो - 610 - 03 (जापान)

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Inst.,
Doshisha University,
Kyoto - 610 - 03 (Japan)

डॉ. स्नेहरानी जैन
पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान,
'छवि', नेहानगर, मकरोनिया,
सागर (म.प्र.)

Dr. Snehrani Jain
Retd. Reader in Pharmacy,
'Chhavi', Nehanagar, Makronia,
Sagar (M.P.)

सम्पादक Editor

डॉ. अनुपम जैन
सहायक प्राध्यापक - गणित,
शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामानगर,
इन्दौर - 452 009
फोन : 0731 - 787790

Dr. Anupam Jain
Asst. Prof. - Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College
'Gyan Chhaya', D - 14, Sudamanagar,
Indore - 452 009
Ph.: 0731 - 787790

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।

वर्ष - 12, अंक - 4, अक्टूबर - दिसम्बर 2000

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादक की कलम से - सामयिक सन्दर्भ 5

☐ अनुपम जैन

प्रकाशकीय अनुरोध 7

☐ देवकुमारसिंह कासलीवाल

लेख / **ARTICLE**

हड़प्पा की मोहरों पर जैन पुराण और आचरण के सन्दर्भ 9

☐ रमेश जैन

राजगृह की सोनभद्र गुफा एवं उसका पुरातत्त्व 17

☐ महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'

आधुनिक विज्ञान, वर्गणाएँ तथा निगोद 27

☐ स्नेहरानी जैन

Jaina Paintings in Tamilnadu 49

☐ T. Ganesan

On the Quadrature of a Circular Annulus 61

☐ Dipak Jadhav

विशेष स्तम्भ

जैनागम, आधुनिक विज्ञान एवं हमारे दैनन्दिन जीवन में ध्यान 67

☐ पारसमल अग्रवाल

आख्या / **REPORTS**

आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित श्रुत भंडार, खजुराहो 75

☐ महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'

श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कार समर्पण समारोह, 28 नवम्बर 2000, अलवर 79

☐ कृष्णा जैन एवं रश्मि जैन

चतुर्थ राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी, उदयपुर, 9 - 12 नवम्बर 2000 83

☐ सुरेखा मिश्रा

टिप्पणी / **SHORT NOTE**

भगवान ऋषभदेव का उद्घोष 85

☐ रवीन्द्रकुमार जैन

अहिंसा ही विश्व में शांति का उपाय 87

☐ इन्दु जैन

पुस्तक समीक्षा/ REVIEW

'युगनिर्माता भगवान ऋषभदेव' द्वारा आचार्य श्री कनकनंदीजी 89

☐ आ. ऋद्धिश्री माताजी

'वर्द्धमान पञ्चांग' द्वारा पं. महेशकुमार जैन शास्त्री 90

☐ महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'

अनुरोध

जैन तीर्थक्षेत्रों के प्रबन्धकों से प्रार्थना 91

☐ खिल्लीमल जैन

गतिविधियाँ 93

ध्यातव्य

1. अर्हत् वचन में जैन धर्म / दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष तथा जैन इतिहास एवं पुरातत्त्व से संबंधित मौलिक, शोधपूर्ण एवं सर्वेक्षणात्मक आलेखों को प्रकाशित किया जाता है।
2. शोध की गुणात्मकता एवं मौलिकता के संरक्षण हेतु दो प्राध्यापकों अथवा पारम्परिक विषय विशेषज्ञों से परीक्षित करा लेने के उपरान्त ही आलेख अर्हत् वचन में प्रकाशित किये जाते हैं।
3. शोध आलेखों के अतिरिक्त संक्षिप्त टिप्पणियां, अकादमिक संगोठी / सम्मेलनों की सूचनाएँ / आख्याएँ, आलेख एवं पुस्तक समीक्षाएँ, विशिष्ट गतिविधियां, विशिष्ट अकादमिक पुरस्कारों एवं प्रकाशनों की सूचनाओं को भी प्रकाशित किया जाता है।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार का पता —

डॉ. अनुपम जैन, सम्पादक - अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज मेन रोड़, इन्दौर - 452 001
फोन : (का.) 545421 (नि.) 787790

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 125=00	रु./Rs. 250=00	U.S. $ 25=00
आजीवन / Life Member (10 वर्षों हेतु)	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 500.00/ U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। सदस्यता शुल्क के चेक / ड्राफ्ट कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नाम इन्दौर में देय **अरविन्दकुमार जैन**, प्रबन्धक - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर को ही प्रेषित करें।

सामयिक सन्दर्भ

*ईसवी सन् के 2000 वर्ष पूर्ण होकर तीसरी सहस्राब्दी के प्रारम्भ की पूर्व बेला में मैं आप सबका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। विश्व समुदाय में आज ईसवी सन् सर्वाधिक प्रचलित है अत: भारत सहित सम्पूर्ण विश्व इस नववर्ष को अधिक उत्साह से मना रहा है। मनाने की सबकी अपनी-अपनी रीतियाँ हैं, किन्तु मूल तत्त्व है मन में उत्साह एवं उमंग का संचार तथा कुछ नया करने की तमन्ना। जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में संलग्न हम और आप सबकी एक प्रमुख चिन्ता है जैन धर्म/संस्कृति का संरक्षण, तथ्यों की पुनर्स्थापना एवं अनर्गल बातों का प्रचार रोकना। इसी पुनीत कार्य को अंजाम देने हेतु 12 मार्च 1996 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के प्रांगण में **गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी** ने भगवान ऋषभदेव जन्म जयन्ती महामहोत्सव का दीप प्रज्ज्वलित कराया था। सौभाग्य से इस दीप का प्रकाश आज चतुर्दिक फैल रहा है। समाज के लगभग सभी संत महात्मा इस कार्य में अपना मंगल आशीर्वाद एवं क्रियात्मक सहयोग दे रहे हैं। राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज ने राजनेताओं को जैनधर्म के बारे में अनर्गल बातों को अविलम्ब पाठ्यपुस्तकों से हटाने के स्पष्ट निर्देश दिये हैं। संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज भी भगवान ऋषभदेव की अहिंसा के प्रचार एवं पशुहत्या को रोकने हेतु सतत् प्रयत्नशील हैं। वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दिजी महाराज एक अभियान चलाकर पाठ्यपुस्तकों की विसंगतियों को दूर कराने हेतु जनजाग्रति कर रहे हैं। विगत दिनों आयड - उदयपुर में सम्पन्न राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी (देखें, पृ. 83) में समागत विद्वानों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने वहाँ के जिलाधीश को ज्ञापन प्रस्तुत कर NCERT की पुस्तक में प्रकाशित अनर्गल बातों को अविलम्ब संशोधित करने का आग्रह किया। आपकी प्रेरणा से Directorate of Local Bodies के उपनिदेशक (प्रशासन) श्री एन. के. खींचा R.A.S. ने अपने पत्र दिनांक 17.8.2000 से प्रो. रामशरण शर्मा को उदयपुर आमंत्रित किया, जिससे वे जैनधर्म के बारे में सही जानकारी ले सकें। सराकोद्धारक संत उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज जहाँ भगवान ऋषभदेव की परम्परा के अनुयायी सराक बन्धुओं के धर्म की मूल धारा में पुन: स्थिरीकरण हेतु प्रयत्नशील हैं वहाँ महामहोत्सव वर्ष में अलवर में उन्होंने अनेकों कार्यक्रमों सहित भव्य प्रतिष्ठा सम्पन्न कराकर भगवान ऋषभदेव एवं उनके सिद्धान्तों की महती प्रभावना की। 11 जून 2000 को दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) के आमंत्रण पर जम्बूद्वीप में इतिहासकारों एवं विद्वानों की एक गोष्ठी हुई जिसमें NCERT के प्रतिनिधि डॉ. प्रीतिश आचार्य भी सम्मिलित हुए। (देखें - अर्हत् वचन, जुलाई 2000) इस सन्दर्भ में श्री खिल्लीमलजी जैन एडवोकेट, अलवर के प्रयास प्रशंसनीय हैं। आज देश के अनेक भागों में ऋषभदेव संगोष्ठियों एवं अन्य माध्यमों से ऋषभदेव एवं उनके सिद्धान्तों की व्यापक चर्चा हो रही है। इसके परिणाम भी शनै: शनै: प्राप्त होंगे किन्तु हमें निरन्तर सतर्क एवं सचेष्ट रहना होगा एवं जैन धर्म/संस्कृति पर किये जाने वाले आक्षेपों का तर्कपूर्ण, वैज्ञानिक रीति से सप्रमाण उत्तर देना होगा, तभी हम अपने कर्तव्य का निर्वहन कर सकेंगे।*

*प्रथम अर्हत् वचन पुरस्कार 99 के विजेता युवा शोध छात्र कुमार अनेकान्त जैन-लाड़नूँ ने हमें एक महत्वपूर्ण सूचना प्रेषित की है। तदनुसार महर्षि दयानन्द सरस्वती वि.वि., अजमेर की बी.ए. भाग-1 में हिन्दी साहित्य के लिये स्वीकृत, राजस्थान प्रकाशन, 28-29 त्रिपोलिया बाजार, जयपुर से प्रकाशित एवं डॉ. श्यामसुन्दर दीक्षित, एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग, जयपुर द्वारा संपादित पुस्तक **प्राचीन काव्य माधुरी** के अध्याय-6, संत सुन्दरदास के अन्तर्गत पृ. 56 पर निम्न त्रिभंगी छंद संख्या-11 प्रकाशित है -*

तौ अरहंत धर्मी भारी भर्मी, केश उपरमीं बेश्रर्मी।
जो भोजन नर्मी पावै कुरभी, मन मधु करमी अति उरमीं॥
अरु द्रृष्टि सुचर्मी अंतरि गरमीं, नाहीं भरमी गह ठेला।
दादू का चेला भर्म पछेला, सुन्दर न्यारा है षेला॥

यद्यपि उक्त छंद का अर्थ स्वयं में स्पष्ट है तथापि संजीव प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-3

से प्रकाशित संजीव पासबुक्स के पृ. 100 पर इसका जो अर्थ दिया है वह भी उद्धृत है -

''**प्रसंग** - यह अवतरण संतकवि सुन्दरदास द्वारा रचित है। इसमें उन्होंने जैन धर्मावलम्बियों के द्वारा किये गये ढोंगी कार्यों पर आक्षेप किया है।'

'**व्याख्या** - संतकवि सुन्दरदास कहते हैं कि जो अरहन्त धर्म अर्थात् जैन धर्म को मानने वाले हैं, वे बहुत ही अज्ञानी हैं। वे सन्यास ग्रहण करने के लिये निर्दयतापूर्वक शरीर के या सिर के केशों को उखाड़ते हैं। यद्यपि वे भोजन करने में अत्यधिक नम्रता दिखाते हैं, पर वे ऐसा भोजन चाहते हैं जिससे उनकी वासना की तृप्ति हो। इस प्रकार उनका मन सांसारिक सुख में आसक्त रहता है लेकिन बाहर से वे दिखाने के लिये महान् संन्यासी बनने का घमंड व्यक्त करते हैं। उनकी दृष्टि सदा सुख-वैभव की ओर लगी रहती है तथा हृदय में हमेशा ढोंग भरा रहता है। इस कारण उनकी साधना भी अज्ञान पर ही आधारित है। संत सुन्दरदास कहते हैं कि मैं इस तरह के अज्ञान को उचित नहीं मानता हूँ। मैं दादूदयाल का शिष्य बनकर भ्रम या अज्ञान को समझ गया हूँ। इस कारण मैं अज्ञान से दूर रहकर अपना कार्य करता रहता हूँ।'

यह सत्य है कि संत सुन्दरदासजी ने केवल जैन धर्म के बारे में ही लिखा हो, ऐसा नहीं है। उन्होंने अन्य धर्मों पर भी आक्षेप किये हैं। उनके पाखण्डों पर चोट की है, किन्तु जैन धर्म के बारे में उनकी टिप्पणी यथार्थ से परे है। हमें ऐसी सकारात्मक बातें लिखनी एवं पढ़ानी चाहिये जिससे समाज में आस्थामय वातावरण बनें। अंधविश्वास त्याज्य है, धार्मिक कट्टरता भी स्वीकार्य नहीं किन्तु धर्म के प्रति आस्था के क्षरण से नैतिक मूल्य स्खलित होते हैं। धार्मिक आस्था भारतीय समाज का वैशिष्ट्य है, जिसके अपने फायदे हैं। धर्मविहीन पश्चिमी समाज की सामाजिक स्थिति किसी से छिपी नहीं है। अत: संपादक महोदय से हमारा अनुरोध है कि संत सुन्दरदासजी की साहित्यिक प्रतिभा का परिचय देने वाले किन्हीं अन्य छन्दों को संकलित करते तो बेहतर रहता। जैन परम्परा एवं मर्यादा के अनुरूप आचरण करने वाले किसी संत या श्रावक की चर्या यदि उन्होंने देखी होती तो शायद ऐसा न लिखते। मैंने 1999 में 'जैन धर्म के बारे में प्रचलित भ्रांतियाँ एवं वास्तविकतायें' शीर्षक पुस्तक का संकलन कर प्रकाशित कराया था उसमें लगभग 30 पुस्तकों की त्रुटियों को संकलित किया था। उसके बाद भी अनेकों भ्रामक जानकारी देने वाली पुस्तकों की सूचनाएँ प्राप्त हुईं। मेरा पुन: एक बार सभी से आग्रह है कि जहाँ भी ऐसी पुस्तक मिले, हमें पुस्तक या सम्बद्ध अंश की छायाप्रति सहित सूचित करें। अपने-अपने स्तर पर सम्बद्ध लेखकों/प्रकाशकों से अनुरोधकर सुधार करायें। मौन रहकर उपेक्षा करने से लाखों बच्चों/पाठकों को भ्रामक जानकारी मिलती है।

अर्हत् वचन का प्रस्तुत अंक पारिवारिक प्रतिकूलताओं के कारण किंचित् विलम्ब से आपके हाथों में पहुँच रहा है किन्तु हमें संतोष है कि हम अक्टूबर-दिसम्बर की निर्धारित समयावधि में इसे प्रकाशित कर सके हैं। इस अंक में प्रकाशित आलेख Jaina Paintings in Tamilnadu में Dicritical Marks का प्रयोग नहीं किया जा सका है। इस लेख के साथ चित्र भी उपलब्ध नहीं हो सके। आगामी अंक **13** (1), जनवरी 2001 में ही आपको उपलब्ध हो जायेगा, एतदर्थ हम आशान्वित हैं। इस अंक के साथ हम आपको अर्हत् वचन के 12 वर्षों में प्रकाशित आलेखों की सूची भी प्रकाशित कर रहे हैं। अर्हत् वचन का 59वाँ अंक **13** (2), अप्रैल 2001 अंक होगा। सुयोग से अप्रैल से ही भगवान महावीर का 2600वाँ जन्मोत्सव वर्ष भी प्रारम्भ हो रहा है, अत: हम 50वें पुष्प को विशेषांक के रूप में प्रकाशित करना चाहते हैं। इस विशेषांक की रूपरेखा के निर्धारण हेतु आपके सुझाव 15 जनवरी 2001 तक सादर आमंत्रित हैं। आपके बहुमूल्य सुझाव हमारे मार्गदर्शक होंगे। आप एतदर्थ अपने मौलिक शोधपूर्ण/सर्वेक्षणात्मक आलेख भी 31 जनवरी 2001 तक प्रेषित कर सकते हैं।

एक बार पुन: मैं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ निदेशक मण्डल, अर्हत् वचन सम्पादक मण्डल एवं ज्ञानपीठ में अपने सहयोगी डॉ. प्रकाशचन्द जैन, डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' एवं श्री अरविन्दकुमार जैन के प्रति पत्रिका के सम्पादन, प्रकाशन एवं वितरण कार्य में प्रदत्त सहयोग के लिये आभार ज्ञापित करता हूँ। माननीय लेखक एवं सुधी पाठक भी बधाई के पात्र हैं।

डॉ. अनुपम जैन

प्रकाशकीय अनुरोध

अर्हत् वचन का यह 48 वाँ अंक आपको समर्पित करते हुए मुझे हर्ष एवं गर्व की अनुभूति हो रही है। प्रस्तुत अंक ***12 (4)*** *अक्टूबर - दिसम्बर 2000 बारहवें वर्ष का अंतिम अंक है तथा नई सहस्राब्दि एवं शताब्दी की पूर्व संध्या में आपके हाथों में पहुँच रहा है। अत: सर्वप्रथम मैं आप सबको ईसवी नववर्ष की शुभकामनायें एवं बधाई देता हूँ एवं आशा करता हूँ कि वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रांति के वर्तमान युग में जब संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं, हम और आप मिलकर अपनी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने में सफल हो सकेंगे। हम और आप सभी इस बात से सहमत होंगे कि जैन परम्परा की सांस्कृतिक विरासत अत्यन्त समृद्ध है। हमारे पास प्राचीन मूर्तियों, शिलालेखों, मंदिरों, शिल्पखण्डों एवं पांडुलिपियों का विशाल भंडार है किन्तु इसका बहुभाग आज तक असूचीकृत, असूचित, असुरक्षित एवं अमूल्यांकित है। भारतीय संस्कृति के समग्र एवं जैन संस्कृति के विशेष रूप से मूल्यांकन हेतु इस ओर अविलम्ब ध्यान दिया जाना जरूरी है, क्योंकि कालक्रम से प्राकृतिक रूप से एवं संस्कृति विरोधी मानवों के निहित स्वार्थों के कारण इन सांस्कृतिक धरोहरों के विनाश की गति इन दिनों बढ़ गई है। हमारी नई पीढी की धर्म के प्रति सहज आस्था भी निरन्तर घट रही है। फलत: वैज्ञानिक दृष्टि से अपनी पारम्परिक क्रियाओं का महत्व प्रतिपादित करना एवं अपने महान् आचार्यों की वैज्ञानिक दृष्टि तथा विज्ञान विषयक उनके ज्ञान को भी उद्घाटित करना संस्कृति, संरक्षण तथा धर्म की प्रभावना के लिए आवश्यक है। 19 अक्टूबर 1987 को इन्हीं विचारों को मूर्तरूप देने के लिए एक स्वप्न के रूप में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की स्थापना की गई थी। स्वप्न तो कोई भी देख सकता है, किन्तु उसको साकार रूप लेते देखना मुश्किल से नसीब होता है। मुझे इस बात की खुशी है कि इस सहस्राब्दि के अन्त में हम ज्ञानपीठ के रूप में एक मजबूत आधार पर खड़े हैं।* ***सन्दर्भ ग्रंथालय*** *में हमारे पास 8000 से अधिक ग्रंथ 375 से अधिक प्रकार की जैन पत्र - पत्रिकाओं का विशाल भंडार है। आधुनिक कम्प्यूटर केन्द्र की सुविधाओं से सज्जित इस ग्रंथालय को दाशमिक रीति से वर्गीकृत किया गया है। कम्प्यूटर की मदद से किसी भी पुस्तक की स्थिति एवं उससे सम्बद्ध महत्वपूर्ण विवरण पल भर में ज्ञात किये जा सकते हैं। यह सुविधा देश के अत्यन्त प्रतिष्ठित पुस्तकालयों में ही उपलब्ध है। सामाजिक संस्थाओं में तो अभी यह सुविधा कल्पनातीत है। इस ग्रंथालय का शोध छात्र व्यापक रूप से लाभ उठा रहे हैं। ज्ञानपीठ के अन्तर्गत ही संचालित* ***परीक्षा संस्थान*** *से गत 13 वर्षों में लगभग 125000 छात्र / छात्रायें नैतिक शिक्षा, बालबोध एवं पारम्परिक पाठ्यक्रमों प्रथमा, मध्यमा, रत्न, शास्त्री आदि की परीक्षायें सफलता पूर्वक उत्तीर्ण कर चुके हैं। इससे जहाँ किशोरों को जैनधर्म / दर्शन का प्रारम्भिक ज्ञान दिया जा सका, वहीं प्राकृत - संस्कृत भाषा में निबद्ध जैन दर्शन के उच्च अध्ययन की ओर संस्कृत भाषा के विद्यार्थियों को उन्मुख किया गया।*

पुरातत्त्व *के क्षेत्र में विद्या वयो - वृद्ध डॉ. टी. व्ही. जी. शास्त्री के नेतृत्व में लगभग*

8 - 10 वर्षों तक चली गोपाचल क्षेत्र पर विकीर्ण पुरासम्पदा के अभिलेखीकरण एवं मूल्यांकन की गोपाचल परियोजना की सफल परिणति The Jaina Sanctuaries of Gawalior शीर्षक बहुरंगी प्रकाशन के रूप में हुई। इसी श्रृंखला में हमारी नवीन प्रस्तुति **'म.प्र. का जैन शिल्प'** शीघ्र ही आपको प्राप्त होगी। शोध त्रैमासिकी **अर्हत् वचन** के तो आप पाठक हैं ही। जैन समाज में विशेषत: शोध विद्वानों के मध्य इसने जो ख्याति अर्जित की है वह आपसे छिपी नहीं है। हम इसमें निरन्तर परिष्कार करते हुए उत्कृष्टता के नये शिखरों तक पहुँचने का आपको विश्वास दिलाते हैं। **नैतिक शिक्षा भाग - 1 से 7, बालबोध जैन धर्म भाग 1 से 4** के अतिरिक्त **जैन धर्म का सरल परिचय** द्वारा पं. बलभद्र जैन, **जैन धर्म विश्व धर्म** द्वारा पं. नाथूराम डोंगरीय एवं इसके अंग्रेजी अनुवाद जन सामान्य को जैन धर्म का प्राथमिक ज्ञान देने वाली बहुश्रुत पुस्तकें हैं। जन - जन ने इनको खूब सराहा है। कतिपय अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन भी आपको नई शताब्दी के प्रथम वर्ष में मिलेंगे। लगभग 20 छात्र / छात्राएँ इस **शोध संस्थान** से अकादमिक/आर्थिक सहयोग प्राप्त कर अपने Ph.D./M.Phil/M.Ed./M.A. शोधप्रबन्ध / लघु शोधप्रबन्ध लिख चुके हैं एवं अनेकों लिख रहे हैं। श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के आर्थिक सहयोग से हम जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना संचालित कर रहे है। यह परियोजना अगली शताब्दी की समस्त साहित्यिक परियोजनाओं की रीढ़ होगी ; क्योंकि सूचनाओं का आधार यह परियोजना ही बनेगी। इतने मजबूत आधार के साथ हम ज्ञानपीठ में नई सहस्राब्दि का स्वागत करेंगे।

इस आधार को प्राप्त करने में हमें अनेकों समर्पित कार्यकर्त्ताओं का समर्पण मिला है। किन्तु विशेष रूप से मैं उल्लेख करना चाहूँगा **प्रो. नवीन सी. जैन** इन्दौर का, जिन्होंने अत्यन्त निस्पृह एवं समर्पित भाव से 1995 से 2000 तक मानद् निदेशक के रूप में इस संस्थान को अपनी सेवायें प्रदान की। उनके नेतृत्व में ही यह ज्ञानपीठ देवी अहिल्या वि.वि. से मान्य शोध केन्द्र की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका। शारीरिक प्रतिकूलताओं के कारण अब वे हमें नियमित मार्गदर्शन नहीं दे पा रहे हैं; किन्तु हमें विश्वास है कि देश - विदेश में उनके सुदीर्घ अनुभव का लाभ हमें सतत मिलता रहेगा। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्य परिषद, निदेशक मंडल, अर्हत् वचन सम्पादक मंडल एवं ज्ञानपीठ कार्यालय के सभी समर्पित अधिकारियों / कर्मचारियों को भी मैं उनके समर्पण हेतु साधुवाद देता हूँ। उनका यह समर्पण भाव निरन्तर वृद्धिंगत होता रहे, यही कामना है। दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के सभी माननीय ट्रस्टियों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने अपना पूर्ण सहयोग, समर्थन मुझे प्रदान किया जिससे मैं अपनी कल्पना को मूर्तरूप दे सका। कुंदकुंद ज्ञानपीठ के सचिव **डॉ. अनुपम जैन** तो प्रारंभ से ही मेरी कल्पनाओं को आकार देने में सहभागी रहे हैं। ज्ञानपीठ तो उनके जीवन का लक्ष्य ही बन गया है। वे अहिर्निश ज्ञानपीठ की प्रगति के बारे में ही चिंतन करते हैं। मैं उनको शुभाशीष देता हूँ कि वे इसी समर्पण भाव एवं पूर्ण मनोयोग से कार्य करते रहें।

अर्हत् वचन के 13 वें वर्ष में प्रवेश के साथ इसमें अनेक परिवर्तन प्रस्तावित हैं। जिनकी जानकारी समय - समय पर दी जावेगी। अर्हत् वचन जैन विद्याओं के अध्ययन / अनुसंधान का दर्पण बने, यही कामना है। आपके सुझावों का सदैव स्वागत है।

देवकुमारसिंह कासलीवाल

वर्ष - 12, अंक - 4, अक्टूबर 2000, 9 - 16

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

हड़प्पा की मोहरों पर जैन - पुराण और आचरण के सन्दर्भ

■ रमेश जैन *

सर्वप्रथम यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हड़प्पा की लिपि अभी तक बोधगम्य स्वीकार नहीं की गई है। वर्तमान लेखक ने अपनी ओर से पूर्णत: वैज्ञानिक पद्धति का अनुकरण करते हुए वाचन के प्रयास किये हैं और अपनी अवधारणा के अनुरूप हड़प्पा लिपि की चारित्रिक विशेषताएँ गिनाते हुए उसके अनुरूप विकसित की गई वाचन - पद्धति का ब्यौरा भी विभिन्न प्रकाशित एवं प्रसारित शोध पत्रों में प्रस्तुत किया है। उन्हीं वाचन - प्रयासों में से चुने गए जैन पौराणिक व आचरण विषयक कुछ उदाहरण यहाँ उपलब्ध किये जा रहे हैं। उन उदाहरणों से संबंधित हड़प्पा की मोहरों के चिह्नों और उन पर उकेरे गये चित्रों के विवरण भी इरावती महादेवन के ग्रन्थ से प्रस्तुत किये जा रहे हैं।[1] इसी प्रकार यहाँ यह जोड़ देना उपयोगी होगा कि वाचन प्रयासों से उपलब्ध सभी शब्दों के अर्थ सर मोनियर - विलियम्स के संस्कृत अंग्रेजी शब्दकोष पर आधारित हैं।[2]

हड़प्पा के लेखन की मूल प्रवृत्तियां

वर्ष 1986 - 87 के हड़प्पा की लिपि के वाचन - प्रयासों के प्रारम्भिक दिनों में जैन विषयों की उपस्थिति के संकेत मुझे चौंकाने वाले लगते थे। फिर हड़प्पा लिपि के अध्ययन संबंधी अपने शोध (शोध उपाधि के लिये) कार्य में सतत् उनकी पुष्टि होती दिखती रही।[3] भाषा और लिपि का अध्ययन ज्यों - ज्यों आगे बढ़ता गया, हड़प्पा संस्कृति के विषय में उसके विशुद्ध भारतीय, आंचलिक होने का विश्वास पक्का होता गया। और अपने सहज सरल स्वरूप में संस्कृत की सहोदरा और प्राकृत के समान भारतीय अंचलों की धूल माटी में सनी भाषा उजागर होती गई। उसी के साथ मोटे तौर पर लिखावट में निहित साहित्य श्रमणिक स्वभाव का होना सुनिश्चित होता गया। विषय को सूत्र रूप में प्रस्तुत करना इस लिखावट की विशेषता है। काव्यमयी भाषा में उकेरे गये शब्द अपनी प्रकृति से ही विशुद्ध सरल स्वभाव के हैं। हर शब्द अपने मौलिक स्वरूप में, सम्पूर्ण बहुआयामी विविधता के साथ, लेखक के सन्देश को जहाँ एक ओर अग्रसर करता है, वहीं दूसरी ओर वह अपने भावात्मक इतिहास का अहसास करा देता है और इन शब्दों में पिरोया हुआ मिलता है, एक श्रमणिक समाज का वृहत्तर ताना बाना। इस अध्ययन से एक ओर जहाँ हड़प्पा लिपि का ध्वन्यात्मक होना तय होता है वहीं हड़प्पा के चिह्न प्रतीकात्मकता और चित्रात्मकता के मूलगुणों को भी संजोये हुए हैं। इससे वाचन प्रयासों का मार्ग प्रशस्त होता है एवं वाचन प्रयास के लिये प्रामाणिकता का आधार भी तैयार होता है।[4]

हड़प्पा संस्कृति : मानव सभ्यता का प्राचीनतम झूलाघर

इस बीच हड़प्पा के समान प्राचीन संस्कृति में जैन पौराणिक सन्दर्भों की समीक्षा करने के लिये तैयार होने में, कुछ पुस्तकों के अध्ययन ने मेरी बड़ी मदद की। इनमें से दो लेखक और उनका साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। प्रथम स्थान पर 19वीं सदी के मध्य में ई. पोकॉक नामक अंग्रेज विद्वान् द्वारा लिखा गया ग्रंथ है, भारत की यूनान

* वास्तुकला एवं नगर नियोजन विभाग, मौलाना आजाद प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, भोपाल - 462 007 (म.प्र.)

में उपस्थिति (इण्डिया इन ग्रीस)।[5] इस ग्रंथ में वह यूनान देश के प्राचीन इतिहास की विसंगतियों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए सविस्तार बताता है कि प्रारम्भिक दौर में यूनान के मूल निवासी अत्यंत दीन-हीन अवस्था में निवास करते थे। उन्हें भारत से विस्थापित होकर आये श्रमणिक समुदाय के लोगों ने न सिर्फ सभ्यता का पाठ पढ़ाया, बल्कि उनको धार्मिक, पौराणिक और भाषाई पहचान भी प्रदान की। इसी श्रेणी के दूसरे विद्वान् हैं प्रसिद्ध ईसाई पादरी - फादर हेरास। आप हड़प्पा की लिपि के प्रारम्भिक अध्येताओं में से एक हैं। आपने भारत के साथ-साथ योरोप और मध्य एशिया के विभिन्न देशों के प्राचीन इतिहास और वहाँ प्रचलित भाषाओं का गहन अध्ययन किया। और उस आधार पर हड़प्पा के लेखन को समझने का प्रयास किया। अपने ग्रंथ - स्टडीज इन प्रोटा-इण्डो-मैडीटरेनियम कल्चर[6], में आपने प्राचीन इराक देश के सुमेरियन नामक सांस्कृतिक स्तर पर 'अन' नामक देवता का जिक्र किया है। जिसके विषय में वे विस्तार से वर्णन करते हैं। और वहाँ की खुदाई से प्राप्त उसकी कांस्य प्रतिमाओं के फोटोग्राफ प्रस्तुत करते हुए उसकी समानता हड़प्पा की संस्कृति से उपलब्ध मूर्ति शिल्पों और बाद के भारतीय ऐतिहासिक व पौराणिक व्यक्तियों में देखते हैं। सुमेरी 'अन' के खोफज़े नामक स्थान से उत्खनित मूर्तियों की कुछ विशेषताएँ उन्होंने गिनाई हैं, वे उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं -

अ. मूर्ति सदा नग्न अवस्था में प्रस्तुत की गई है।

ब. बहुधा मूर्ति के कन्धों पर बालों की दो लटें प्रदर्शित की जाती हैं, जबकि उसके सिर के शेष हिस्से में बालों का अभाव दर्शाया गया है।

स. मूर्ति के सिर पर चारों ओर चार फलकों वाला त्रिशूल दर्शाया जाता है।

द. ताँबे की इन मूर्तियों में आँखें अलग से भरकर बनाई जाती हैं।

ह. मूर्ति की कमर के चारों ओर रस्सी या पट्टीनुमा कोई चीज लिपटी हुई दिखाई जाती है।

फ. 'अन' की मूर्तियों के साथ उसी रूपाकार की, दो थोड़ी छोटी मूर्तियाँ भी मिलती हैं, इनमें से कभी-कभी एक नारी मूर्ति भी होती है। 'अन' की इन मूर्तियों में, नग्नता, कन्धों तक फैली बालों की लटें, सिर के ऊपर स्थापित त्रिरत्न या एक ही समय में चारों ओर देख पाने की क्षमता के प्रतीक की उपस्थिति और भारतीय जैन मूर्तियों की परम्परा के समान मात्र मूर्ति की आंखों को भरकर (इनले की पद्धति से) बनाने की परिपाटी का अनुकरण इत्यादि विशेषताएँ उसे सीधे हड़प्पा संस्कृति के माध्यम से जैनों की ऋषभदेव की मूर्ति-परम्परा से जोड़ती हैं। यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि 'अन' नाम 'अंङ्क' शब्द या फिर इण्डो योरोपियन शब्द 'वन' (अंग्रेजी) का पूर्वज रहा होगा जो ऋषभदेव के पर्यायवाची 'आदि' का समान धर्मा है। इस पर फादर हेरास का यह कथन महत्वपूर्ण हो जाता है कि सांस्कृतिक प्रवाह की धारा तब भारत अर्थात् हड़प्पा संस्कृति से सुमेर की ओर थी। इसकी पुष्टि सर जॉन मार्शल के उस वक्तव्य से भी होती है जो हड़प्पा संस्कृति की खोज को स्थापित करने के तुरन्त बाद 1923-24 में उन्होंने दिया था।[7] अपने समय के श्रेष्ठ पुरातत्त्वविदों की अनुशंषाओं को ध्यान में रखते हुए उसमें उन्होंने सम्भावना व्यक्त की थी कि भारत ही मानव संस्कृति का प्रथम झूलाघर रहा होगा।

हड़प्पा लिपि के अध्ययन से जुड़ी कुछ विसंगतियाँ :

अत: हड़प्पा संस्कृति की लिपि के अध्ययन से उभरते जैनों के आचरण संबंधी

और पौराणिक स्वरों और उस समय की समकालीन संस्कृतियों के विकास पर उनकी गहरी छाप के रहते, मेरा हड़प्पा की मोहरों पर उत्कीर्ण अभिलेखों का अध्ययन आगे बढ़ता रहा। मगर हड़प्पा की लिपि विश्व के लिपिशास्त्रियों के लिये एक अभेद्य दीवार बनी हुई है। इतना ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर विद्वानों के बीच एक प्रकार का दुराग्रह विकसित होता रहा है। सम्भवत: इसके पीछे कुछ राजनैतिक कारण भी रहे हैं। सामान्यत: विदेशी पाश्चात्य विद्वान् जहाँ एक ओर इस लिपि में व्यक्त भाषा को द्रविड़ सिद्ध करने पर तुले हुए हैं और उन्हीं के इस प्रवाह के रहते तुछ तमिल भाषी विद्वान् हड़प्पा लिपि के चिन्हों को मात्र प्रतीक चिन्ह (इडियोग्राफ्स) समझकर मोहरों पर तमिल भाषा उकेरी गई होने का आग्रह करते हैं। इसके विपरीत भारतीय विद्वान्, जाने अनजाने और सम्भवत: भारतीय उपमहाद्वीप की भौगोलिक स्थिति और उसके सांस्कृतिक इतिहास को दृष्टि में रखते हुए, हड़प्पा की लिखावट में संस्कृत मूलक भाषा पर जोर दे रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में किसी भी अध्येता के लिये अपने विचारों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है और अगर वह अपनी बात कहे भी तो विद्वत् समाज सहमति देने में कठिनाई का अनुभव करता है। इस विषय की सबसे बड़ी बाधा ऐसे बाहरी प्रमाण के नितांत अभाव की है जो लिपि के वाचन के किसी प्रयास के लिये निर्णायक हो सकें। कई प्राचीन लिपियों के वाचन-प्रयासों के समय द्विभाषिक अभिलेख बड़े सहायक सिद्ध हुए थे ; मगर हड़प्पा लिपि के सन्दर्भ में ऐसा कोई द्विभाषिक अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है।

मोहरों पर उकेरे गये चित्रों का महत्व :

इन विसंगतियों और कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, यहाँ वाचन-प्रयास करते हुए अभिलेखों में उपलब्ध आंतरिक प्रमाणों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। और सौभाग्य से हड़प्पा लिपि में ऐसे आंतरिक वाचन-प्रमाणों की कमी नहीं है। इनमें सबसे उल्लेखनीय, मोहरों पर उकेरे गये विभिन्न चित्र हैं जो हड़प्पा के चिन्हों के साथ बड़ी कुशलता के साथ उकेरे गये हैं। इन्हें इरावती महादेवन ने 'फिल्ड सिम्बल' नाम दिया है।[8] महादेवन ने ऐसे लगभग एक सौ अलग-अलग चित्रों (फिल्ड सिम्बल) की पहचान की है। अनेक बार मोहरों का लेखक इन चित्रों से लेख की चित्रात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता प्रतीत होता है। इसी कारण चित्रों की उपस्थिति, वाचन-प्रयास के दौरान अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है और वाचन-प्रयास को प्रामाणिकता भी प्रदान करती हुई दिखती है। इन्हीं चित्रों के कुछ उदाहरणों में यदि जैन पौराणिक कथाएँ दर्शाई गई प्रतीत होती हैं, तो कुछ चित्र ऐसे भी हैं जिनमें जैन मुनियों के समान मानवाकृतियाँ, सौम्य भाव लिये कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्णित हैं।[9]

हड़प्पा की लिपि में उकेरे गये जैन आचरण और पुराणों के सन्दर्भ :

जैसा कि पहले कहा गया, प्रारम्भ से हड़प्पा की मोहरों पर जैन विषय वस्तु का अहसास होने लगा था। इस सन्दर्भ में संभवत: सबसे पहला शोध पत्र पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के तत्त्वावधान में सारनाथ में आयोजित गोष्ठी में जनवरी 1988 में प्रस्तुत किया गया था। उस समय उस तुतलाती भाषा को विद्वानों के सम्मुख रखना एक कठिन कार्य था। इसी विषय को पुन: 'जैन सब्जेक्ट मैटर इन द हड़प्पन स्क्रिप्ट' शीर्षक से ऋषभदेव प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित संगोष्ठी में राष्ट्रीय संग्रहालय, देहली में दिनांक 30 अप्रैल, 1 मई 1988 को प्रस्तुत किया गया। अब स्थिति कुछ बेहतर होने लगी थी और कुछ चुने हुए उदाहरण लेते हुए शोध पत्र में हड़प्पा में उकेरे गये जैन सन्दर्भों

को प्रस्तुत किया गया था। उस लिपि की प्रकृति की सीमित पहचान के रहते, सन्दर्भों को पूर्ण स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करना कष्ट साध्य था। फिर भी एक प्रयास किया गया। इस शोधपत्र को बाद में ऋषभ सौरभ पत्रिका के वर्ष 1992 के अंक में प्रकाशित भी किया गया। मगर दुर्भाग्य से उस शोधपत्र में सम्मिलित वाचन - प्रयासों के उदाहरण प्रकाशित पत्र में सम्मिलित नहीं किये गये।[10] उसी क्रम में जैन विषय वस्तु के वाचन के कुछ उदाहरण अन्यान्य शोधपत्रों में स्थान पाते रहे, उनमें से कुछ शोधपत्र प्रकाशित भी हुए हैं। ऐसे ही कुछ चुने हुए वाचन - प्रयासों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

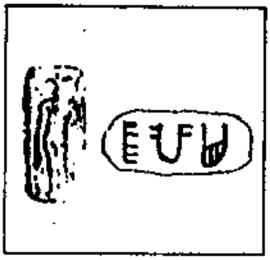

1. अपरिग्रह[11], सील क्रमांक 4318, 210001 प य भर (ण)

जो परिग्रहों को नियंत्रित करता है। (25090) व्यक्ति सिर पर त्रिरत्न धारण किये हुए है और दो स्तम्भों के मध्य में स्थित है।

सील पर उकेरा गया चित्र विषय का चित्रात्मक अलंकरण प्रतीत होता है। यहाँ व्यक्ति सौम्य भाव लिये नग्नावस्था में कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। उकेरे गये चित्र का सम्पूर्ण वातावरण जैनों के समान श्रमणिक प्रतीत होता है।

2. निग्रंथ[12], सील क्रमांक 4307, 210001 य रह गण्ड/ग्रंथि

जिसने बंधन त्याग दिये हैं। (25090) उपरोक्त के समान चित्र में व्यक्ति को नग्न अवस्था में कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है जो पत्तों युक्त गोलाकार द्वार में दिखाया गया है।

पुनः चित्र में जैनों के समान श्रमणिक परम्परा के एक मुनि की चित्रात्मक अभिव्यक्ति प्रतीत होती है।

3. योगाभ्यास[13], सील क्रमांक 2222, 104701 य शासन कर्तृ

जो (स्वयं पर) शासन करता है।

सींग धारण किये एक व्यक्ति तख्त जैसे आसन पर विराजमान है। यह चित्र स्पष्ट रूप से योग साधना में रत एक व्यक्ति का है, जिसे योगाभ्यास के रूप में स्वयं पर नियंत्रण करते हुए दर्शाया गया है।

4. स्वयं में लीन, सील क्रमांक 2410, 100401 य व्रात्य/धर्म स्वसंग

जो व्रात्य या धर्म पुरुष स्वयं के साथ अर्थात् अकेला है। इसे सम्भवतः ऐसे भी कहा जा सकता है - जिसने सब बंधनों को त्याग दिया है और नितांत

अकेला हो गया है।

यह चित्र छोटे सींग वाले एक सांड का है। हड़प्पा के लिपि के वाचन - प्रयास का कार्य आगे बढ़ने से अनुभव होता है कि सम्भवत: छोटे सींग वाले सांड का यह चित्र मोहरों पर ऋषभ के प्रतीक के रूप में अंकित किया गया है। उसी को थोड़े व्यापक सन्दर्भ में शायद एक सींग वाले सांड अर्थात् यूनीकार्न के रूप में उकेरा जाता है तब इसके साथ एक पौराणिक छत्र अर्थात् अक्ष का भी अंकन किया जाता है।

5. जड़ भरत[14], सील क्रमांक 4303, 216001 सत/सुत ज (द्र) व्रत

सुत य द्र वृत अथवा सुत जड़ भरत (ऋषभ) पुत्र जिसके दो (जन्म) वृत (यहाँ चित्रित हैं) अथवा (ऋषभ) पुत्र (ही) जड़ भरत (है)।

एक पक्की मिट्टी की पट्टिका के दोनों ओर दो अलग - अलग मोहरों के छापे अंकित हैं। हड़प्पा के प्रतीक चिह्नों के साथ एक दो मंजिला रूपाकर और एक त्रिशूलनुमा यष्टि के साथ स्थित एक छोटे सींग वाले सांड के बीच में एक मानवाकृति का चित्र है।

4303 216001

27601

यह पूरा फलक हड़प्पा की लेखन पद्धति का दुर्लभ प्रमाण है जिसमें लेखन और चित्रण की सीमाएँ निर्धारित नहीं की गई हैं। लेखन की समग्रता में चित्रण, प्रतीक चिह्न और अक्षर सब एक साथ हैं। सम्पूर्ण चित्र सम्भवत: ऋषभ के पुत्र भरत, जिसे जड़ भरत के नाम से भी जाना जाता है। उसकी एक जीवन कथा का अलंकरण है।[15] मजेदार तथ्य यह है कि जिसे महादेवन बीच की मानवाकृति मान रहे हैं वह भी अक्षर प्रतीक है 'सुत' अर्थात् 'पुत्र'। ऋषभ (छोटी सींग वाला सांड) पुत्र और पालकी में बैठे सौवीरराज के बीच संवाद का दृश्य चित्रित किया गया है।

बिना प्रतीक चिन्हों वाला फलक, दाँयी ओर से प्रारम्भ करके - एक शेर, एक बकरी, एक आसन पर विराजमान एक व्यक्ति और पेड़ की मचान पर बैठा व्यक्ति नीचे शेर के साथ।

यह चित्र पुन: जड़ भरत की एक और जन्म कथा का दृश्य है। **इसमें महादेवन ने जिसे बकरी समझा है वह वास्तव में मृग शावक है।** कथा के अनुसार, सिंह के भय से एक गर्भिणी मृगी, अपने गर्भ के शिशु को त्याग, जल में गिरकर मर जाती है। और उस नन्हें मृग शावक को भरत मुनि पाल लेते हैं। मगर उसके मोह में पड़ने के कारण उन्हें पुन: एक ब्राह्मण के कुल में जन्म लेना पड़ता है। उसी जन्म की एक कथा को दूसरे फलक पर चित्रित किया गया है।

6. ऋषभदेव को समर्पित सत - आसन[16], मोहर क्रमांक 2430, 107811 परमात्म या प्रमातृ या परम नत/व्रात्य

सत्य धर्म/धारणा के प्रतिपादक अथवा परम (महामहिम) नत (हैं)।

मोहर पर दाँयी ओर, क्रम से उकेरे गये हैं -

अ - माथे पर सींग युक्त, पीपल की डालों के बीच एक खड़ी मानवाकृति,

ब - एक कम ऊँचा आसन जिस पर कुछ रखा प्रतीत होता है।

स - माथे पर सींग युक्त एक नत मस्तक बैठी हुई मानवाकृति

द - एक मेढ़ा

इ - नीचे की ओर पंक्तिबद्ध, पोशाख पहने सात लोग।

21 सत/सुत आसन, सत्य का आसन/सिंहासन/सोम का आसन। **33 भृ** धारण करना

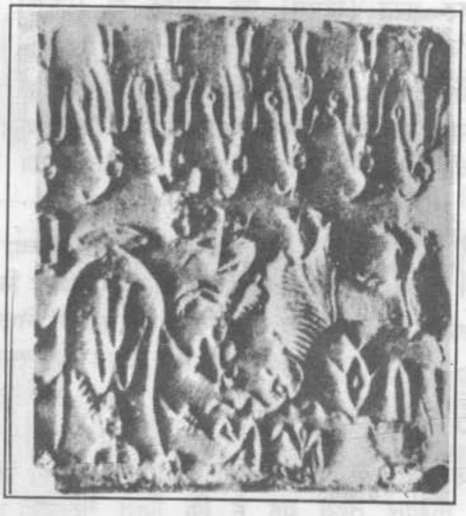

यहाँ पहली पंक्ति नत मस्तक व्यक्तित्व का वर्णन हो सकता है, मगर एक सम्भावना नत मस्तक व्यक्ति द्वारा पीपल की डाली में खड़े व्यक्ति को सम्बोधन भी हो सकता है - **परमात्मा/परम सत्य के उद्घोषक? परम - व्रात्य! सत्य/सोम/राज्य के सिंहासन का आरोहन करें।**

जैन पुराण में वर्णन है कि सन्यास धारण करने के बाद ऋषभदेव छ: माह तक कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े रहे। फिर उसके बाद छ: माह तक प्रतिमायोग में भोजन आहार प्राप्ति के निमित्त घूमते रहे। इस बीच तीर्थंकर परम्परा से अनभिज्ञ सब राजे, महाराजे (भरत चक्रवर्ती सहित) उन्हें तरह - तरह के उपहार व राजसिंहासन इत्यादि अर्पित करते थे।[17] इसी प्रकार अथर्ववेद के व्रात्य सूक्त में वर्णन आता है कि व्रात्य (= ऋषभदेव/ जैन मुनि/वातरशन मुनि?) को एक वर्ष तक खड़े पाकर देव उनसे खड़े रहने का कारण पूछते हैं और जवाब में व्रात्य उन्हें आसन देने को कहते हैं जिसे 'देव' उपलब्ध कराते हैं।[18]

दोनों ही कथाओं में, एक वर्ष की अवधि के उपरान्त 'आसन' प्रदान करना उल्लेखित है। इसमें यदि अथर्ववेद की कथा के 'देव' को 'शासक' स्वीकार कर लिया जाये तो मोहर पर के चित्रांकन को समझना बहुत हद तक सरल हो जाता है। इससे, एक और सम्भावित कथा[19] के स्वीकार की सम्भावनाएँ भी बढ़ जाती हैं, जिसमें सम्भवत: चक्रवर्ती भरत अपने छोटे भाई बाहुबली की असफल तपस्या का कारण उसके मन में फँसी 'पराये राज्य' में खड़े होने के क्षोभ की भावना को जानकर उसकी मुक्ति के लिये राज्य सिंहासन अर्पण करता है। सम्भव है कि भारत की अन्यान्य पौराणिक कथाएँ, और हो सकता है कई विदेशी कथाएँ, भी किसी एक ही मूल सत्य पर आधारित हों।

7. सोमत्व[20], मोहर क्रमांक 2420, 104811 य सोमामृत/य सोमामरण/सोमामर

सोम जो अमर है अथवा सोम में जो अमर है।

सिर पर सींग धारण कियेहुए तीन दृश्यमान चेहरे युक्त आसन पर विराजमान

व्यक्ति जिसे पाँच जीवों ने घेरा हुआ है। दायीं ओर से पशुओं का क्रम है गेंड़ा, भैंसा, मृग, शेर और हाथी।

मृग की उपस्थिति के विषय में उल्लेखनीय है कि 'वह' युगल रूप में आसन के नीचे, विपरीत दिशाओं में गर्दन घुमाये हुए दर्शाये गये हैं। मानों वे उपरोक्त व्यक्तित्व के वाहन के प्रतीक हों।

यहाँ सोम, चन्द्र के माध्यम से शिव के व्यक्तित्व से जुड़ता है। और शिव अपनी मूल अवधारणा में ऋषभ के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं। इससे क्या हम निष्पत्ति निकाल सकते हैं कि सोमत्व ही शिवत्व या केवलज्ञान अथवा अमृत है? इसी प्रकार यदि ऋषभदेव को, ऐतिहासिक अवधारणा से ऊपर उठकर पहचानने का प्रयास करें, तो क्या वे दिन रात की तरह दो विपरीत मगर समान काल खण्डों के, सूर्योदय अथवा दूज के चांद के समान मिलन बिन्दु का मानवीकरण हैं?

8. **मेधिवृत में जुते हुए पशुओं, मुक्त होओ**[21], (धौलावीरा, कच्छ, गुजरात की गढ़ी के उत्तरी द्वार पर अंकित धर्म संदेश) - **मेधिवृत जग प्रवृत पशु भव भ्रम् वृत,** पशुवत होकर मानव समाज (जग) मेधिवृत में जुतकर चक्कर लगाता है।

यह संदेश हड़प्पा के दस चिन्हों के माध्यम से उपरोक्त द्वार के शीर्ष पर, 'मोजाइक' पद्धति से सम्भवतः काष्ट फलक पर बनाया गया था, जो पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. आर. एस. बिष्ट को द्वार मार्ग के पास वाले बरामदे में उलटा पड़ा मिला है। जैसा कि वाचन-प्रयास से उपलब्ध शब्दों से ज्ञात होता है, धर्म संदेश का यह मात्र आधा भाग है, दूसरा पूर्ण करने वाला शेष भाग, द्वार मार्ग के दूसरी ओर अंकित रहा होगा, या फिर इस फलक के नीचे एक दूसरी पंक्ति भी लिखी गई होगी जो अब नष्ट हो गई है।

सन्दर्भ ग्रंथों की सूची -

1. द इण्डस स्क्रिप्ट, इरावती महादेवन, भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण निदेशालय, नई दिल्ली, 1977.
2. संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, सर मोनियर विलियम्स, मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, तृतीय पुनरावृत्ति, 1988.
3. जैन सब्जैक्ट मैटर ऑन द हड़प्पन सील्स, डॉ. रमेश जैन, ऋषभ सौरभ, ऋषभदेव प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1992, पृ. 113 - 116.
4. टेस्ट डिसाईफरमेंट आफ द हड़प्पन इंस्क्रिपशन्स, डॉ, रमेश जैन (शोध पत्र भारतीय पुराभिलेखन परिषद् के 26 - 39 अप्रैल 2000 को इरोड़, तमिलनाडु में सम्पन्न वार्षिक अधिवेशन में प्रस्तुत किया गया)।
5. इण्डिया इन ग्रीस, ई. पोकाक, ओरिएण्टल पब्लिशर्स, देहली, भारत, वर्ष 1972 (पुनरावृत्ति)।
6. स्टडीज इन प्रोटो - इण्डो - मैडीटरेनियन कल्चर, फादर ह. हेरास, इण्डियन हिस्टॉरिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मुम्बई, 1953, पृ. 170 - 181.

7. एनुअल रिपोर्ट, आर्कोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1923 - 24, सर जॉन मार्शल, पृ. 50.
8. इरावती महादेवन, 1977.
9. हड़प्पन्स रोट इन वैदिक लैंगुएज, डॉ. रमेश जैन, पुराभिलेख पत्रिका, अंक - 24, 1998, पृ. 46 - 50.
10. रमेश जैन, 1992.
11. सन्दर्भ 9 की तरह.
12. सन्दर्भ 9 की तरह.
13. सन्दर्भ 9 की तरह.
14. सन्दर्भ 9 की तरह.
15. ए क्लासिकल डिक्शनरी आफ इण्डिया, जॉन गैरेट, एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली (पुनर्मुद्रण), 1989.
16. रमेश जैन, 2000.
17. पुण्यास्रव कथाकोषम्, श्री रामचन्द, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, 1987, पृ. 269.
18. जिन ऋषभ तथा श्रमण परम्परा का वैदिक मूल, डॉ. मुनीशचन्द्र जोशी, ऋषभ सौरभ, 1992, पृ. 66 - 67.
19. श्री रामचन्द्र, 1978, पृ. 276.
20. सन्दर्भ 12 की तरह.
21. आवरण कथा, ओजस्विनी, वर्ष 5, अंक 6, पृ. 17.

संशोधित रूप में प्राप्त - 25.9.2000

वर्ष - 12, अंक - 4, अक्टूबर 2000, 17 - 26

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

राजगृह की सोनभद्र गुफा एवं उसका पुरातत्त्व

■ महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' *

पुराकाल में पहाड़ों में शिलाओं को काटकर गुफा निर्माण को अत्यन्त महत्व दिया जाता था। ऋषि, तपस्वी जंगलों, पर्वतों में विचरण करते थे और प्राकृतिक रूप से बन गई गुफाओं को अपना आवास बनाते थे। वे गुफाएँ उनकी आत्म साधना में सहायक होती थीं, कारण कि शांतिमय वातावरण के साथ - साथ उनमें सर्दियों में गरमी और ग्रीष्म ऋतु में शीतलता स्वाभाविक रूप से रहती थी। इस तरह की विशेषताएँ देखकर राजाओं, सामन्तों, धर्माधिकारियों ने पहाड़ों, पहाड़ियों की चट्टानों को काटकर गुफाओं का निर्माण करवाया, जिनका उद्देश्य यति - मुनियों को शान्तिमय विश्रामस्थल उपलब्ध कराना रहा है। शिलाओं को कटवाते हुए उन्हें तरासने का विचार आया और कुशल कारीगरों द्वारा सम्बन्धित विभिन्न अंकन करवाये। अंकन इतने महत्वपूर्ण करवाये कि वे आज अपना सम्पूर्ण इतिहास संजोये हुए हैं।

जो गुफाएँ जैन संस्कृति और पुरातत्त्व से सम्बद्ध हैं वे गुफाएँ हैं - बराबर पहाड़ी, नागार्जुनी पहाड़ी, उदयगिरि - खण्डगिरि, पभौषा, जूनागढ़, विदिशा, तेरापुर, श्रवणबेलगोला, सित्तन्नवासल, ऐहोल, ऐलोरा, दक्षिण त्रावणकोर, अंकाई - तंकाई, ग्वालियर, कुलुआ पहाड़ और राजगृह की गुफाएँ।

सोनभद्र गुफा

इनमें राजगृह की सोनभद्र (सोनभण्डार) गुफा पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह गुफा राजगृह के वैभार पर्वत के पूर्व - दक्षिण पहाड़ मूल में खुदी है, जो नगर के दक्षिण - पश्चिम की ओर गया मार्ग पर अवस्थित है। यह गुफा प्राचीन राजगृह नगर परिधि के अन्दर और नवीन राजगृह की नगर परिधि के बाहर है।

सोनभद्र या सोन भण्डार नामक यह गुफा 34' लम्बी, 17' फुट चौड़ी और 11.5' ऊँची है। कहते हैं तत्कालीन मगध नरेश जरासंध ने अपना सोने का खजाना इस गुफा में जमा किया था जो उसने मगध और आस - पास के जंगली राजाओं से इकट्ठा किया था।[1] गुफा के आगे मुख्य मण्डप या बरामदा था जो खम्बों पर टिका था। अब स्तम्भों की केवल चूलें रह गई हैं। इस प्रकार मुखमण्डपयुक्त गुफा की वास्तु शैली लगभग 5वीं शती ई.पूर्व में ही अस्तित्त्व में आ चुकी थी।[2]

अभिलेख - इस गुफा में जाने के द्वार की दाहिनी तरफ ब्राह्मीलिपि में एक शिलालेख उत्कीर्णित है। (चित्र संख्या 1) दो पंक्तियों के शिलालेख को इस तरह पढ़ा गया है -

निर्वाण लाभाय तपस्वि योग्ये शुभे गुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे।
आचार्यरत्नम् मुनि वैर देवः विमुक्तये कारय दीर्घ तेजः॥[3]

निर्वाण की प्राप्ति के लिये तपस्वियों के योग्य और श्री अर्हन्त की प्रतिमा से प्रतिष्ठित शुभ गुफा में मुनि वैर देव को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी

* शोधाधिकारी - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584 महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

रत्न प्राप्त हुआ। अर्थात् मुनि संघ ने मुनि वैरदेव को आचार्य स्थापित किया।

गुफा में एक और लेख अंकित है जो इस प्रकार है -

''श्रीमद्वीर देवशासनाम्बरावभासनसहस्रकर''

भगवान् महावीर के शासन रूपी आकाश को प्रकाशित करने वाला सूर्य।[4] उक्त अभिलेख के निकट एक छोटी नग्न मूर्ति का नीचे का भाग है, जो निःसन्देह किसी जैन तीर्थंकर की मूर्ति का है।[5]

समय - यदि इस किंवदन्ति पर विश्वास किया जाये कि जरासंध ने आसपास की रियासतों और राज्यों से लाकर इस गुफा में धन एकत्र किया था, तो इसका समय तीर्थंकर नेमिनाथ के समय का ठहरता है, उस समय नारायण कृष्ण के प्रतिनारायण जरासंध थे। इस गुफा के निर्माण और शैली के अनुसार पुराविदों ने इसका निर्माण (शैशुनाग-नन्द युग 600 से 326 ई. पूर्व) 5वीं शती ईस्वी पूर्व माना है। कुछ विद्वानों ने इस गुफा को मौर्यवंश से सम्बद्ध (325 - 184 ईस्वी पूर्व) बताया है।[6] इसमें जो दो पंक्ति का लेख है उसकी लिपि का परीक्षण करके इस लेख को चौथी शती का माना गया है, लेकिन इसमें छोटे - छोटे अन्य लेख हैं उनकी लिपि निःसन्देह अत्यन्त प्राचीन है। कई लेखों को तो अब तक पढ़ा नहीं जा सका है। आर्द्रिस बनर्जी ने लिखा है कि सोनभद्र गुहा में यद्यपि गुप्तकालीन लेख हैं, पर इस गुफा का निर्माण गुप्तकाल के पहले ही हुआ होगा।[7]

सर्वतोभद्र प्रतिमा

इस गुफा में सन् 1975 तक एक सर्वतोभद्र प्रतिमा अर्थात् चारों ओर जिनांकित प्रतिमा स्थित थी। (चित्र संख्या 2) इसकी ऊँचाई लगभग चार फुट है। इस सर्वतोभद्रिका में चारों ओर आदि के चार तीर्थंकर - ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ और अभिनन्दनाथ निर्मापित हैं (चित्र संख्या 3)।

इनमें कायोत्सर्गस्थ कमलासन के नीचे बीच में धर्मचक्र, चक्र के दोनो ओर तीर्थंकर तथा चिन्ह युग्म रूप में अंकित है। क्रमशः अनुकुलाभिमुख दो वृषभ, अनुकुलाभिमुख दो हाथी, दो घोड़े और दो बन्दर अलग - अलग प्रतिमाओं के नीचे उत्कीर्णित हैं। चरणों के पास दोनों पार्श्वों में दो चँवरधारी, दोनों पार्श्वों में और कर्णों के समतल में दो गगनचर. ऊपर छत्रत्रय, छत्रत्रय के ऊपर दोनों ओर पुष्पवृष्टि करते दो हाथ शिल्पित हैं। भामण्डल लुप्त होकर वहाँ अशोक वृक्ष के पत्र गुच्छ दोनों ओर लटक रहे शिल्पांकित हैं। चारों मूर्तियों में चिन्हों की भिन्नता के अतिरिक्त पूर्ण शिल्पांकन में समानता है। केवल ऋषभनाथ की जटाएँ स्कंधों तक लम्बित दर्शाई गई हैं, यह भिन्नता है।

वर्तमान स्थिति - यह चतुर्मुख प्रतिमा 1975 तक इस सोनभद्र गुफा में थी (चित्र संख्या - 2)। बाद में इसे नालन्दा पुरातत्त्व संग्रहालय ले जाया गया और वहाँ संग्रहालय परिसर के लॉन में इसे 13 - 14 वर्ष तक रखे रहा गया। वर्तमान में यह मूर्ति नालन्दा संग्रहालय में विधिवत् प्रदर्शित है।

समय - इसके अंकन व पाषाण परीक्षणादि से इसका समय विक्रम की आठवीं शताब्दी का माना गया है।

पर्यटकों को क्या बताया जाता है - पुरातत्त्व विभाग से अनुमत व प्रशिक्षित गाइड निश्चित

शब्दावली तीन भाषाओं में (हिन्दी, अंग्रेजी और बंगला) कंठस्थ किये हुए रहता है। यहाँ आने वाले पर्यटकों को वह बताता है कि - ''इस गुफा के अन्दर बड़ी भारी गुफा है, एक दरवाजा है जो बंद है, इसमें राजा जरासंध का सोने का भण्डार रखा हुआ है, बाहर ये जो शिलालेख लिखा हुआ है, जो इस लेख को पढ़ लेगा वही दरवाजा खोल सकता है। विध्वंसक बादशाह औरंगजेब यहाँ आया था , उसने इस खिड़की में तोप रखकर सोन भण्डार के इस दरवाजे को तोप से ध्वस्त करने का प्रयास किया था किन्तु तोप से मात्र थोड़ी सी किरिंच ही टूटी, तोप के गोले का अमुक स्थान पर काला निशान अभी भी है।'' इत्यादि।

वास्तविकता क्या है - राजगृह की इन गुफाओं का सर्वेक्षण करने लेखक नौ बार वहाँ गया, मार्गदर्शक की रटी रटाई शब्दावली तो मैंने कई बार सुनी थी। फुरसत के क्षणों में हमने एक बार उसका निर्धारित शुल्क उसे पुन: देकर उससे पूछा कि आप जो रहस्य बताते हो इसकी वास्तविकता क्या है? उसने हमें उसी बिन्दु पर ले जाकर बताया कि देखिये, वस्तुत: यहाँ अन्दर दरवाजा होने के कोई चिन्ह नहीं हैं। ये जो द्वार के ऊपरी भाग जैसा इस दरार के कारण दिख रहा है, इस दरार को ध्यान से देखें तो यह आगे जाकर विशाल शिला में विलुप्त हो गई है। हमने औरंगजेब की तोप के निशान के विषय में पूछा तो उस गाइड ने दरार के पास से टूटे हुए थोड़े से पत्थर के स्थान को बताया। उसने बताया कि यहाँ किसी तोप आदि का निशान नहीं है, इस स्थान पर बंगाली पर्यटक श्रद्धावश मोमबत्ती जलाते हैं, इस कारण से यहाँ काला पड़ गया है। हमने वहाँ उंगली से घिस कर देखा तो उंगली में कालिख लग गया। हमें स्पष्ट हो गया कि इस गुफा के अन्दर की ओर एक और गुफा, उसमें स्वर्ण भण्डार की मौजूदगी, तोप का निशान आदि ये सब मात्र पर्यटकों को आकर्षित करने की कपोल कल्पनाएँ हो सकती हैं।

दूसरी गुफा

ऊपर वर्णित गुफा से लगभग 50 फीट उत्तर में इसके समानान्तर कुछ नीचाई में एक और भग्न गुफा है। यह भी पूर्वाभिमुख है, इसकी लम्बाई 22.5' एवं चौड़ाई 17 फीट है। ऊपर का हिस्सा तथा आगे की भित्ति, चट्टानों का ऊपरी भाग पूर्णतया भग्न है। इस कारण इस गुफा में ऊपर खुला आसमान है। इसका मुख्य द्वार आग्नेय कोण में उत्तराभिमुख है।

जैन मूर्ति एवं स्थापत्य की दृष्टि से यह गुफा अति महत्व की है। इसकी पूर्वी और उत्तरी अन्तरभित्तियों में जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ उत्कीर्णित हैं। इन सपरिकर जिन भित्ति मूर्तियों में जैन प्रतिमा विज्ञान की अनेक स्थापनाएँ छुपी हुई हैं, जो अब तक विश्लेषित नहीं हुई हैं। इस गुफा की पूर्वी दीवार में दो कायोत्सर्ग मुद्रा में तथा चार ध्यान मुद्रा में जिन बिम्ब उकरित हैं (चित्र संख्या 4)।

दो कायोत्सर्ग भित्ति प्रतिमाएँ

गुफा के द्वार की बायीं ओर अन्त: पूर्वी शिलाभित्ति में सपरिकर पाँच तीर्थंकर प्रतिमाएँ निर्मापित हैं। उनमें भी (दर्शक के) बाएँ की दो प्रतिमाएँ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। दोनों के पादपीठ के रूप में कमल उकेरे गये हैं। प्रत्येक के दोनों पार्श्वों में छोटे आकार में एक-एक चँवरधारी, चँवरधारियों के ऊपर एक-एक गगनचारी देव, साधारण प्रभावल, प्रभावल के ऊपर

छत्रत्रय और छत्रत्रय के ऊपर अशोक वृक्ष के मनोरम ऊपरी पत्रगुच्छ शिल्पांकित हैं, चिन्ह का अंकन नहीं है। दोनों प्रतिमाओं के तथा उनके परिकर अंकन में समानताएँ हैं। दोनों चॅवरधारी दाहिने दाहिने हाथ में चॅवर लिये हुए हैं। सूक्ष्मता से देखने पर दो भिन्नताएँ दृष्टिगत होती हैं - (1) बायें से प्रथम प्रतिमा के केश विन्यास हैं, जिनकी लटें स्कन्धों पर लटक रहीं उकरित हैं। (2) दायीं प्रतिमा पर दर्शाये गये गगनचारी देव हाथ जोड़े हैं जबकि वाईं ओर के गगनचारी देव हाथों में माला लिये हुए हैं (चित्र संख्या 5)।

ध्यान मुद्रा में सर्पकुण्डल्यासनस्थ प्रतिमा

दोनों कायोत्सर्ग प्रतिमाओं के बाद तीसरी (पाँचों में मध्य की) ध्यानस्थ जिन प्रतिमा जैन प्रतिमा - विज्ञान में चिन्ह एवं पादपीठ अंकन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके वक्षस्थल से ऊपरी भाग का शिलाखण्ड भग्न हो जाने के कारण प्रतिमा का ऊर्ध्व भाग और उसका ऊपरी परिकर नष्ट हो गया है। ऊपर केवल प्रतिमा के दाहिनी ओर का गगनचर माल्यधारी दिखाई देता है। पादपीठ में मध्य में अण्डाकार धर्मचक्र है, इसके 22 आरा हैं। चक्र के दोनों ओर दो विरुद्धाभिमुख गज (हाथी) अंकित हैं, हाथियों के बाद समानान्तर (पादपीठ में ही) एक - एक ध्यानस्थ जिन अंकित हैं। तीर्थंकर प्रतिमा सर्पकुण्डली पर ध्यान मुद्रा में बैठी हुई दर्शाई गई है, तथा इसी सर्पकुण्डली का पृष्ठासन उकरित है। और निश्चित रूप से फणाटोप था जो शिला का ऊपरी भाग भंग हो जाने से नष्ट हो गया है, फिर भी फण का कुछ भाग अभी परिलक्षित होता है। इस तीर्थंकर प्रतिमा के अन्य परिकर में बाईं ओर का चँवरधारी तथा दाहिनी ओर का गगनचारी माल्यधारी देव भग्न शिला में खण्डित दृष्टिगोचर होता है (चित्र संख्या 6)।

दो विशेषताएँ - ऊपर उल्लेखित प्रतिमा (चित्र संख्या 6) में दो विशेषताएँ हैं। एक तो इसके पादपीठ में (सिंहासन के) सिंह द्वय के स्थान पर गज द्वय अंकित हैं। सिंहासन के सिंह और तीर्थंकर के चिन्ह रूप में सिंह या अन्य चिन्ह के अंकन में यह भिन्नता रही है कि सिंहासन के सिंह प्रायः दो ही होंगे और विरुद्धाभिमुख शिल्पित किये जायेंगे तथा चिन्ह रूप में सिंह एक या दो भी हो सकते हैं। यदि चिन्ह के लिये दो का अंकन किया जाता है तो वे अनुकूलाभिमुख रहेंगे। यहाँ गज विरुद्धाभिमुख शिल्पांकित हैं। दूसरी विशेषता यह है कि यह प्रतिमा सर्पकुण्डली पर आसीन दिखाई गई है। सर्प पृष्ठासन और फणाच्छदन भी है। इससे ज्ञात होता है कि तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। किन्तु गज द्वय का अंकन यदि चिन्ह के रूप में हुआ है तो सर्प फणाच्छादन युक्त द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की यह प्रतिमा है और यदि गजद्वय का अंकन आसन के रूप में हुआ है तो सिंहासन के स्थान पर गजासन के अंकन का यह प्रतिमा विज्ञान में अद्वितीय उदाहरण है।

ध्यान मुद्रा में दो प्रतिमाएँ

पाँच तीर्थंकर भित्ति प्रतिमाओं में मध्य की प्रतिमा के बाएँ तरफ की दो अन्य प्रतिमाएँ भी ध्यानमुद्रा में शिल्पित हैं। दोनों के परिकर में लगभग समानता है। पादपीठ के बीच में चक्र, चक्र के दोनों ओर समानान्तर में बहिर्मुख एक - एक सिंह, पादपीठ में ही सिंहो के बाद और समानान्तर दोनों ओर एक - एक जिन दोनों प्रतिमाओं में अंकित हैं। प्रतिमाओं के दोनों पार्श्वों में पादपीठ के जिनों के ऊपर की ओर एक - एक चॅवरधारी अंकित हैं जो दाहिने हाथों में ही चँवर लिये दर्शाये गये हैं। इन दोनों प्रतिमाओं में से

सबसे अन्त की प्रतिमा के मस्तक सहित ऊपर की शिला तथा दूसरी प्रतिमा के प्रभावल से ऊपर भाग की शिला (गुफा की दीवार) टूटी हुई है जिससे दुन्दुभि वादक, गगनचर, छत्रत्रय और अशोक वृक्ष का कोई विश्लेषण नहीं किया जा सकता है (चित्र संख्या 7 एवं 8)।

विशेषत: – मध्य प्रतिमा से बाईं ओर अन्तिम से दूसरी प्रतिमा के प्रभावल में मस्तक के दोनों ओर तेज की प्रतीक प्रज्ज्वलित अग्नि का अंकन है। प्रभावल में अग्नि की लपटों का शिल्पांकन इस क्षेत्र की अन्य किसी प्रतिमा में नहीं किया गया है।

एक और भित्ति प्रतिमा

इस द्वितीय भग्न गुफा के एकमात्र पूर्व-दक्षिणी द्वार से प्रवेश करने पर बाएँ तरफ एक पद्मासन प्रतिमा शिल्पित है। यह प्राय: भग्न है, इसके पादपीठ में चक्र, सिंहासन के सिंह द्वय, द्वि-जिन और चँवरधारियों के कुछ भाग दृष्टिगत होते हैं। ऊपर अशोक वृक्ष की उपरिम सपत्र डालियों का अंकन सुरक्षित है। पादपीठ के नीचे दाहिनी ओर एक मानवाकृति कुछ झुकी हुई शिल्पित है।

वर्तमान स्थिति – हमने इन गुफाओं का नौ बार सर्वेक्षण किया है। इस दूसरी गुफा में जैन भित्ति मूर्तियां होने से न तो इसकी तरफ पर्यटकों को आकृष्ट किया जाता है और न ही इसकी पुख्ता सुरक्षा व्यवस्था है। लकड़हारे प्राय: यहाँ की मूर्तियों को पत्थरों से क्षति पहुँचाते रहते हैं। हम तो जब भी यहाँ दोबारा गये, यहाँ की जैन मूर्तियों में कुछ न कुछ क्षति पहुँचाई गई देखी। इस गुफा में अनेक पुरातात्त्विक छोटे-छोटे लेख हैं, लेकिन उन्हें लोग कभी-कभार खुरचते रहते हैं।

समय – इस दूसरी गुफा में निर्मित मूर्तियाँ विक्रम की चौथी शताब्दी की हैं। इसमें निर्मित सभी मूर्तियों के आसन के निकट दोनों तरफ दो मूर्तियाँ और होने से इन्हें त्रितीर्थी कहा जा सकता है। चौथी शती की एक त्रितीर्थी नेमिनाथ जिन प्रतिमा मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त हुई थी जो अब लखनऊ संग्रहालय में प्रदर्शित है[8], उस मूर्ति से यहाँ कि मूर्तियों के अंकन में काफी साम्य है। इन मूर्तियों और गुफा के विषय में मत दिये गये हैं कि 'सोनभद्र गुफा की ये मूर्तियाँ तथा शिलालेख गुप्तकालीन हैं, यह गुफा मौर्यकाल में बनी थी।'[9]

इस तरह सोनभद्र (सोन भण्डार) गुफाओं के अध्ययन से कहा जा सकता है कि ये गुफाएँ अत्यन्त महत्व की हैं, अति प्राचीन हैं और जैन मुनि वैरदेव या वीरदेव से सम्बन्ध रखती हैं तथा इनमें संक्षेपत: निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

- जटाजूट और सर्पफणाच्छादन के अतिरिक्त अन्य चिन्हों के अंकन के प्रारम्भिक काल का द्योतन होता है।
- सभी जिनों के चँवरधारियों के दाहिने - दाहिने हाथ में चँवर हैं।
- एक प्रतिमा के सर्पकुण्डल्यासन, सर्पकुण्डलिपृष्ठासन, सर्पफणाच्छादन और पादपीठ में गज - द्वय का *अंकन।*
- एक प्रतिमा के प्रभावल में प्रज्ज्वलित निर्धूम अग्नि।
- सभी प्रतिमाओं के पादपीठ में दो - दो लघु - जिन का अंकन।

सन्दर्भ -

1. भारतीय कला (शैशुनाग - नन्द युग की कला), पृष्ठ 89.
2. वही, पृष्ठ 89
3. शीतल प्रसाद, प्राचीन जैन स्मारक, पृ. 11, कलकत्ता, 1923.
4. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ 526, अखिल भा. दि. जैन विद्वत् परिषद, 1967.
5. शीतल प्रसाद, प्राचीन जैन स्मारक, कलकत्ता, 1923.
6. भारतीय कला (शौशुनाग - नंद युग की कला), पृ. 89.
7. इण्डिन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, XXII, पृ. 205.
8. डॉ. मारुतिनन्दन तिवारी, जैन प्रतिमा विज्ञान, चित्र संख्या 25.
9. इण्डियन क्वार्टरली, वाल्यूम 25 वाँ, पृष्ठ 205। पं. भागचन्द 'भागेन्दु', भारतीय संस्कृति में जैन तीर्थों का योगदान, पृष्ठ 19, अलीगंज, 1961.

संशोधित रूप में प्राप्त - 25.9.2000

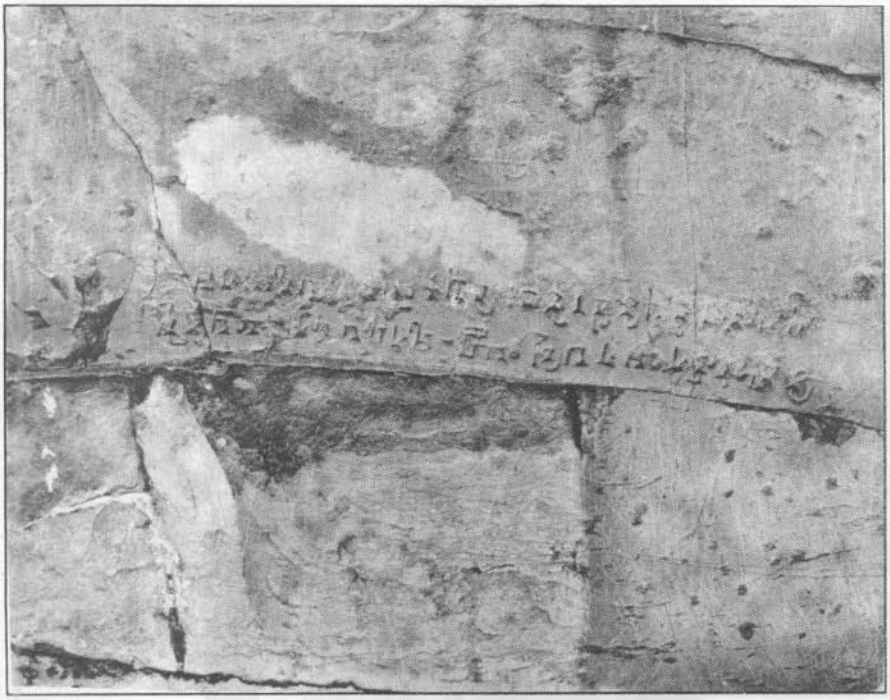

चित्र संख्या 1

चित्र संख्या 2

चित्र संख्या 3

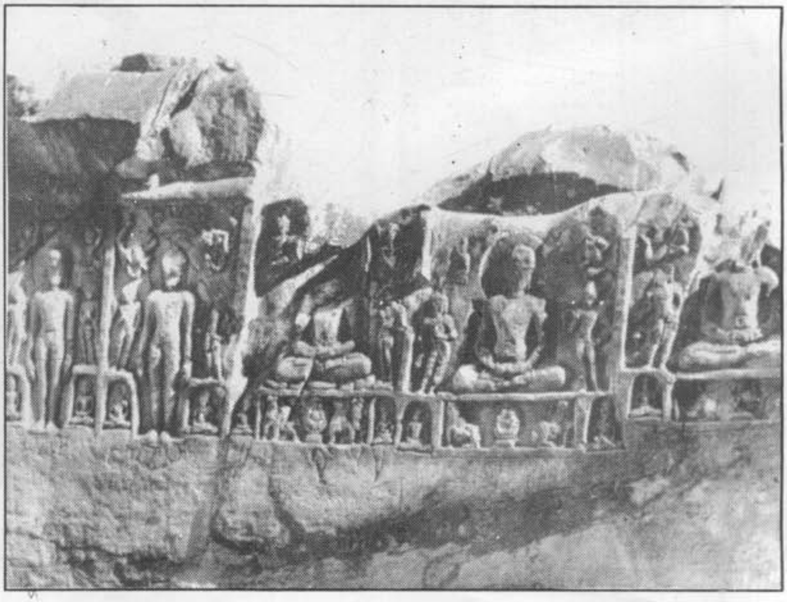

चित्र संख्या 4

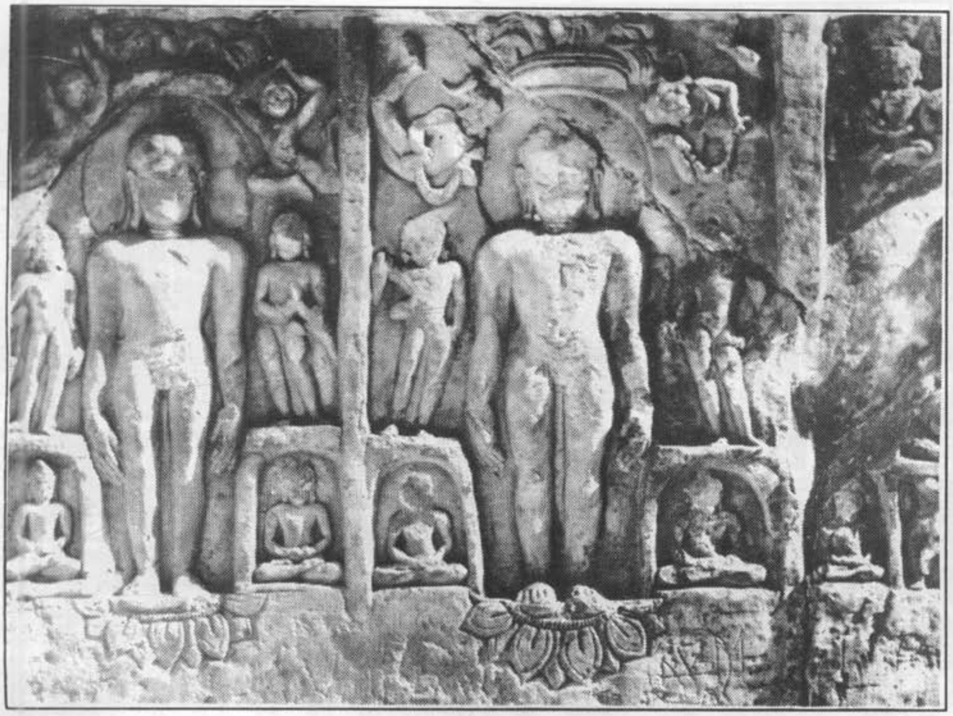

चित्र संख्या 5

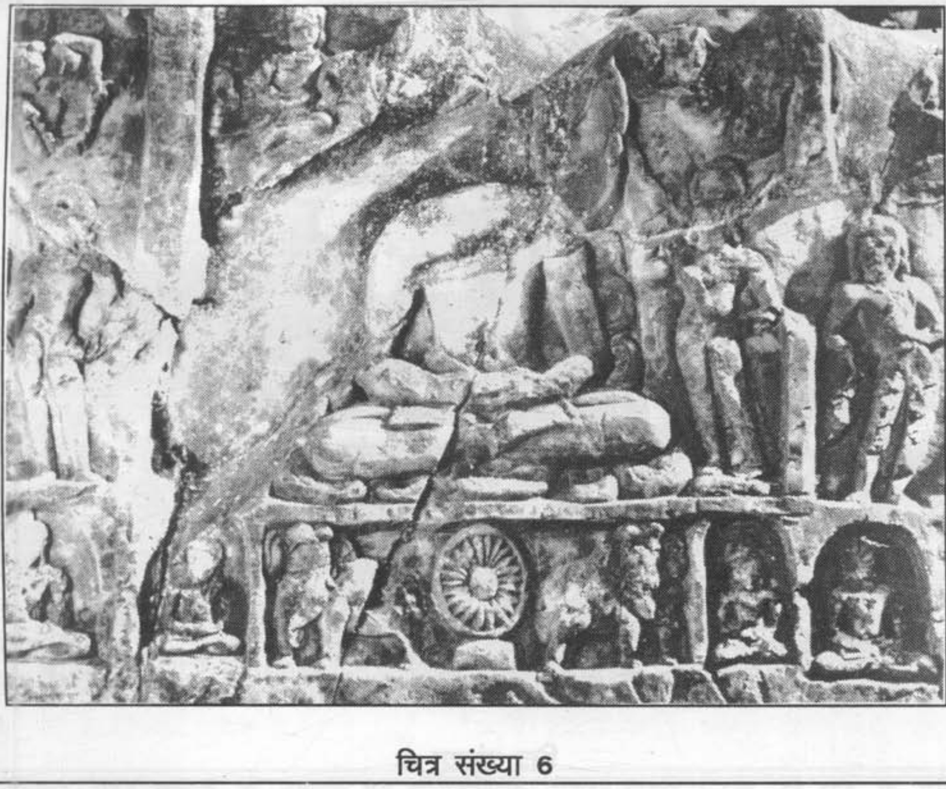

चित्र संख्या 6

चित्र संख्या 7

चित्र संख्या 8

वर्ष - 12, अंक - 4, अक्टूबर 2000, 27 - 47

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आधुनिक विज्ञान, वर्गणाएँ तथा निगोद

■ स्नेहरानी जैन *

जैन मान्यतानुसार दर्शाए गये छहों द्रव्यों - आकाश (Space), काल (Time), धर्म (The medium of Motion), अधर्म (Gravity to help Rest), पुद्गल (Matter), तथा जीव (Vital Energy) में से पाँच को आधुनिक विज्ञान संबंधी शोधों ने काफी सीमा तक स्वीकारा है क्योंकि सफलताएँ उनके पक्ष में आ चुकी हैं। इन पाँचों संबंधी सिद्धान्त भी पुष्ट हो गये हैं। अब आकाश की असीम गहराइयों को समझा जाने लगा है। काल को खण्डों में बांट उसे भूत, वर्तमान और भविष्य के साथ - साथ वर्षों, मासों, सप्ताहों, दिनों, घंटों, मिनिटों, सेकंडों में तो बाँधने का प्रयास किया ही है, तत्संबंधी गणनाएँ भी ग्राफ पेपर के सहारे सहज सुलभ कर ली हैं। काल के परिवर्तन / वर्तना संबंधी सिद्धान्त को पुद्गल परमाणुओं पर प्रभाव के आधार से लक्ष्य करके ताप तथा दबाव संबंधी सहभागीपने को भी समझा जाने लगा है। औषधियों के प्रभाव काल की गणना पर ताप, प्रकाश, ओषर्जन आदि का सीधा संबंध जानते हुए उनकी प्रायोगिकता को सुरक्षा मिली है। इसी प्रकार रेडियो - एक्टिव औषधियों के खुराक संबंधी गणित द्वारा इन्हें रोगियों में सुरक्षित और सही मात्रा में उपलब्ध कराने के साधन भी बन गये हैं। हलन - चलन के माध्यम तथा ठहराव के माध्यम को भी समझा जाने लगा है और पुद्गल के रहस्यों को भी कुछ सीमा तक समझा जाने लगा है। यह सब संभव हुआ है भौतिकी (Physics) के माध्यम से। वहीं पुद्गल के रसायन रहस्य को रसायन शास्त्र (Chemistry) में प्रस्तुत किया गया है।

पुद्गल के अस्तित्व को जड़ और जैविक दोनों ही जगत में वर्तमान होने के कारण भौतिकी और रसायन से अलग जीवविज्ञान (Biology) में भी अध्ययन बांटना आवश्यक समझा गया है जो विस्तारमयी तीन अलग - अलग शाखाओं में जाना जाता है। वे हैं - वनस्पति विज्ञान (Botany) प्राणीविज्ञान (Zoology) तथा सूक्ष्म जीव - विज्ञान (Micro biology)।

जड़ और जीवन को बतलाने वाले तीन बिन्दु भी सर्वमान्य घोषित हैं - (1) संवेदना की प्रतीक प्रतिक्रियात्मकता (Reactivity), (2) आहार वर्गणाओं का उपयोग और मल का निष्कासन (Metabolism) तथा (3) प्रजनन (Reproductibility)। किन्तु इतनी विशेष जानकारियों के बाद भी [1] **जैन शासन द्वारा समझाया गया मूल आधार, छठवां द्रव्य 'जीव'** अभी आधुनिक विज्ञान की पकड़ से कोसों दूर है। विज्ञान समझ नहीं पा रहा है कि शरीर से अदृष्ट (गायब) होने वाला वह कौनसा तत्त्व है जो उसे शव बनाकर छोड़ जाता है। इस शरीर में वह कहाँ है? कैसा है? वह, जो जब तक रहता है दिमाग के माध्यम से बुद्धि का प्रदर्शन करते हुए सुनना, समझना, जानना, प्रतिक्रिया देना आदि तो करता है, किन्तु उसे वह न तो परिभाषित कर पाता है ना ही उपेक्षा कर छोड़ सकता है। अतः विज्ञान ने उसे **जटिलता** (Complexity) कहकर टालने के प्रयास किये हैं। भले ही इस दिशा में खोजें जारी हैं जिनसे **जीन्स संबंधी** रोचक जानकारी भी प्रकाश में आई है। चिकित्सक भी हारकर अन्ततः रोगी का जीवन किसी 'अज्ञात शक्ति' के सहारे छोड़ देते हैं।

* पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर। निवास : C/o. श्री आर. के. मलैया, स्टेशन रोड, सागर (म.प्र.)

जैन मान्यता है कि छहों द्रव्य ही पूरे संसार को रूप देते हैं, छहों अपने आप में स्वतंत्र हैं, अविनाशी हैं, शाश्वत् हैं तथा एक दूसरे को बाधा नहीं देते, विज्ञान भी स्वीकारता है। **'आकाश'** के असीम विस्तार **में शेष** पाँच समाये हैं। आकाश एक इकाई होने के बावजूद क्षेत्रीय दृष्टि से प्रदेशों में बंटा है जहां **'काल'** इकाई के भी सूक्ष्मतम अंश **'कालाणु'** प्रत्येक प्रदेश में एक-एक कर ठसाठस भरे हैं जिस प्रकार खसखस के दाने अथवा मोती। प्रत्येक कालाणु **'निश्चय-काल'** का सूक्ष्मतम अंश, निरन्तर परिणमन करते हुए सभी संपर्क में अवस्थित पुद्गल **परमाणुओं** में भी वर्तना लाता है। इसी कारण उसके स्वयं के वर्तना/परिणमन का भी बोध होता है। पुद्गल के परमाणु भी दृष्ट/अदृष्ट रूप से सारे त्रिलोक आकाश प्रदेशों में बिखरे पड़े हैं। वे जहाँ-जहाँ हैं वहाँ-वहाँ काल का **वर्तना प्रभाव** दृष्टिगत है। वे जहाँ नहीं हैं (यथा **अलोकाकाश में**) वहाँ उनकी अनुपस्थिति **वर्तना प्रभाव ना** होने से स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक विज्ञान **'निश्चय काल'** के इस पक्ष से अवगत नहीं है। इसी प्रकार अनादि भूत, वर्तमान और अनंत भविष्य के बीच 'वर्तमान' का सूक्ष्मतम होना **'व्यवहार काल'** की 'समय' इकाई कहा गया है। इसे विज्ञान Time Point कहकर इंगित करता तो है, किन्तु इसकी सूक्ष्मता को नहीं समझ पाया है। एक सेकंड में समयों की लम्बी **आवलि** मानी गई है, जो बिन्दु (Point) नहीं, रेखात्मक (Linear) है। अर्थात् एक के बाद एक 'समय' को पिरोये हुए है जिसमें न तो 'समय' उछलकर आगे या पीछे सरक सकता है और ना ही इकट्ठे 'कई समय' एक साथ स्कंध बन, सरक सकते हैं। जैन आध्यात्म में अपने शरीर को भुलाकर 'अपने आप' की अनुभूति होना इसी 'व्यावहारिक' सूक्ष्म कालांश, 'समय' में संभव है जो **वर्तमान** होता है। अतः 'समय' को स्वयं से जोड़ने वाला अनुभूतक तत्त्व 'आत्मा' भी कहा गया है। यह तब संभव होता है जब बाह्य संसार से ऐन्द्रिक व्यापार रूककर अन्तर्यात्रा प्रारम्भ होती है। वही **'सामायिक'** है। आधुनिक विज्ञान इसे परिभाषित नहीं कर पाया है। उसने तो **रेखा** को ही सही परिभाषित नहीं किया है। बिन्दु भी वास्तव में विस्तार नहीं केन्द्र है - और **केन्द्र** की काल अपेक्षित निरन्तरता ही रेखा हो सकती है।

'माध्यमों' का रहस्य जैन आचार्यों ने किस विधि से समझा होगा आश्चर्यचकित कर देता है। **न्यूटन के सिद्धान्त से बहुत-बहुत पूर्व ही इनकी उपस्थिति की घोषणा 'षट् द्रव्यों' के रूप में न्यूटन को 'बौना' बना जाती है।** ईथर और ग्रेविटी बहुत बाद की खोजें हैं, पर विश्वसनीय हैं।

जीव (Vital Energy) का अस्तित्त्व मात्र एक 'शक्ति' मानकर विज्ञान ने उसकी विशेषता को जानते हुए भी 'अनजान' मान लिया है।

'शक्ति' का आधार तो विज्ञान पुद्गल का सूक्ष्मतम अंश 'अणु' मानता ही है। मेन्डलीफ के पीरियाडिक टेबिल के आधार पर[2] 105 प्रकार के तात्त्विक (Elements) अणु/परमाणु पाये जा सकते हैं जो स्वतंत्र भी रह सकते हैं। इन सभी को छिन्न भिन्न करते जायें तो क्रमशः **इलेक्ट्रॉन**, फोटोन, प्रोटॉन, न्यूट्रिनों को कम करते हुए अणु शून्य में समा जायेगा और विकीर्णित अंश 'शक्तियों' के रूप में सामने आयेंगे, जो छह प्रकार की (ताप, प्रकाश, दबाव, चुम्बक, विद्युत, ध्वनि) जानी देखी जाती हैं। जैन मान्यतानुसार ये सब पुद्गल हैं।[3]

कुछेक पुद्गल अणु मात्र **पुद्गल** रूप पड़े रह जाते हैं और कुछ किसी विशेष 'शक्ति' का संपर्क पाकर 'जीवन' रूप परिणमित होते हैं, यही संकेत करता है कि आणविक

शक्ति और **उस विशेष शक्ति** (जैविक) में बहुत बड़ा भेद है। उस विशेष शक्ति को जैनाचार्यों ने सर्वाधिक प्रधानता दी है, क्योंकि वही 'विशेष शक्ति' सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में स्पन्दन करती हुई अपनी - अपनी पर्यायों की उपस्थिति से इस संसार को अस्तित्त्व देती है। सब एकाकी, अलग - अलग सर्वथा स्वतंत्र पथ पर भ्रमण करती है। इन्हें 'जीव' कहा गया है जो विज्ञान समझ नहीं पाया है। जीव अकेला होते हुए भी अनंतानंत है। विस्मित होते हुए भी विज्ञान इसे नकार नहीं पाता और स्पष्ट भी नहीं कर पाता है।

जो पुद्गल जीव द्रव्य के साथ संयोग करके जीवराशि बनाते हैं वह सूक्ष्मतम जीवन भी जैन सिद्धान्तानुसार त्रस नाड़ी में ठसाठस है, मध्यलोक में विस्तरित है तथा संसार के संसरण का कारण है। इसी पुद्गल द्रव्य से समस्त वस्तुओं का अस्तित्त्व और उत्पाद - ध्रौव्य - व्यय परिलक्षित होता है। सम्पूर्ण संसार की दृष्ट - अदृष्ट भूलभुलैया बनाने वाले यही **पुद्गल** तथा पुद्गल में उलझा **जीव** द्रव्य है। शुद्ध स्थिति में **जीव** सर्वप्रधान, मुक्त, सिद्ध प्रभु हैं, चिदानंद हैं और इस पौद्गलिक संसार से दूर **अछूते** स्थित हैं। समस्त सिद्ध, जीव / आत्माएँ प्रकाश की भांति उस अछूते क्षेत्र, **सिद्ध शिला** (जो पुद्गल से अभेद्य है) पर एक साथ अवस्थित हैं जहाँ भीड़ होकर भी कभी भीड़ संभव नहीं। अब वे कभी भी इस संसार में वापस बंधने नहीं आयेंगी, क्योंकि कोई शक्ति उन्हें बांध नहीं सकती, वे परम शांत हैं।

आत्म द्रव्य अथवा जीव को बांधने वाली शक्ति उसी में स्वयं में उठती चंचलता जन्य **आकर्षण शक्ति** है जो साथ फैली वर्गणाओं को चुन - चुन कर खींच लेती है ठीक हमारी श्वांस प्रक्रिया की तरह [जिस प्रकार वायु अपने आप हमारी श्वांस में नहीं आती हम उसे खींचकर उसकी ओषजन वर्गणाएँ ले लेते हैं और उसमें कार्बनमोनोक्साइड डाल देते हैं जो उसी क्षण डायआक्साइड बन कर फिक जाती हैं। अथवा हम शुद्ध जल वर्गणाएँ पीकर उसे श्वांस (वाष्प) से, सतही भाप तथा नव मलद्वारों के मलों स्वरूप निष्काषित कर देते हैं।] जो जीव द्रव्य **जीवन रूप** में हमें संसार में (जैविक रूप) दिखता है, उसने स्वयं की चंचलता (उठती इच्छाओं) के कारण **कर्मवर्गणाओं** के बादलों को आकृष्ट कर अपने को गहरे दलदल में डुबा लिया है। इतना गहरा डुबाया है कि उसकी कहानी गहन गहराइयों में पड़े **'निगोद'** स्थिति से प्रारम्भ की जा सकती है। काल प्रभाव से परिवर्तित झेलते कर्मों का फल भोगते, कर्मों की निर्जरा करते वह कभी सर्वोत्तम ऊँचाइयों में **मनुष्य** स्थिति में भी आया तो यहाँ से इच्छाओं और कषायों के घेरों में स्वयं अंधा बन पुनः पुनः कर्म दलदल की गहराइयों में जा डूबा। इसलिये उसके संसार का अंत नहीं हुआ। मनुष्य के अलावा **किसी अन्य पर्याय में इसे सिवाय निरीह जीवन जीने के** कहीं इतना सामर्थ्य ना रहा कि ये अपनी दुर्गतियों अथवा स्थितियों के बारे में सोच सकता। मनुष्य होकर भी सदैव अज्ञानवश रह या तो उस कल्पित 'सृष्टिकर्ता भगवान' नामक शक्ति (?) को कोसता रहा अथवा दूसरों को अपना सुख और दुःख का जिम्मेदार ठहराते हुए कर्म आवरण बढ़ाता रहा। प्रत्येक जीव इस प्रकार स्वयं के कर्मों का आवरण ओढ़ता हुआ उसी के फलों को भुनाता - भोगता, 84 लाख योनियों के चक्र में भ्रमण करता रहा है। यही उसके एकाकी जीवन की सत्यताओं को स्पष्ट करा देता है।

जैनागमों में इस सम्पूर्ण 'जीवन जगत' को पाँच श्रेणियों में उनकी ऐन्द्रिक सामर्थ्य के अनुसार विभाजित किया गया है, जिसे अभी विज्ञान भी उतनी गहराई में नहीं देख

पाया है। किन्तु विज्ञान की एक बात प्रशंसनीय है कि वह मूढ़ता से परे सत्य को समझते ही स्वीकारने में देर नहीं करता।

सामान्य व्यक्ति 'कर्म' शब्द को वैसे ही जिस अंदाज में उपयोग करता है, उससे वह 'किया हुआ कर्म' ही समझता है। गीता में कृष्णजी द्वारा उसे लगभग ऐसा ही समझाया प्रतीत होता है, किन्तु जैन सिद्धान्त में 'कर्म' की व्याख्या उस वर्गणा रूपी घिराव से है जिससे आत्म तत्त्व अनुबंधित हो जाता है। अत: 'कर्म' यानि कार्माण वर्गणाएँ जिनका **'आस्रव' और 'बंध' हुआ** तथा जो जाते-जाते अपने-अपने उदय समय पर 'कर्मफल' दिखा कर ही जायेंगीं। जीवित शरीर स्वयं इन कर्मों ही का पिंड है। पाठकगण विस्मय करेंगे कि स्थूल में ये 8 प्रकार की कार्माण वर्गणाएँ क्या और कैसी होती होंगीं? कहाँ होती होंगीं? हमें दिखती क्यों नहीं? जबकि उनके ही कारण यह शरीर, व्यक्तित्त्व, लिंग, कुल जीवन, ज्ञान, उपलब्धियां, सुख-दुख आदि मिलते हैं। वास्तव में ये अनंतानंत प्रकार की होती हैं।

आज हम तो यही मानते और जानते हैं कि वह 'डिम्ब' और 'शुक्राणु' जो संयोग कर भ्रूण में फलित होते हैं अपने रासायनिक अवयव, 'क्रोमेसोमल' (प्रोटीन वर्गणाएँ) तत्त्वों के कारण 'जीन्स' पर आधारित भ्रूण की संवर्धना (शरीर), व्यक्तित्त्व, लिंग और पर्याप्तियों हेतु कारण होते हैं। किन्तु उनके उस 'संयोग' को किसने बाधित अथवा सहयोग किया, किसने उस पर्याय को चुना, किसने जीवन में सुख-दु:ख, उपलब्धियाँ और ज्ञान दिया इसकी ओर विज्ञान 'मौन' रह जाता है। अत्यंत प्रबुद्ध माता-पिता की संतान भी कभी विक्षिप्त और कभी ज्ञानहीन क्यों रहती है? रुचियों में, जीन्स के बावजूद मेल क्यों नहीं बैठता? आनुवांशिक निर्दोषता के बावजूद बालकों में कभी-कभी असाध्य विकृतियाँ क्यों स्थान पा लेतीं हैं? कोडोन (Codon) सही संदेश क्यों नहीं दे पाते? डी.एन.ए. रेप्लीकेशन में 'छूट' (Missings) क्यों हो जाती है? इसके सही-सही उत्तर हम जानते हुए भी नहीं जानते हैं, बायोटेक्नॉलाजिस्ट भी नहीं जानते। जैनाचार्यों ने इन सब बातों को वर्गणाओं का खेल बतलाया है जो आत्मा के ऊपर हजारों कार्माण बादलों (वर्गणाओं) के कारण ही होता है।

रसायन विज्ञान की तरह जैन विज्ञान भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को वर्गणाओं (Molecular Aggregates) से भरा मानता है। यह पौद्‌गलिक होती हैं। ये हवा जिसे हम पंखे से अनुभव करते हैं, यह गर्मी-सर्दी-नमी, धूल, प्रकाश, ध्वनि, ऊर्जा, खुशबू-बदबू, अनुकूल-प्रतिकूल आबोहवा, एलर्जेन्स (Allergens), श्वांस-प्रच्छ्वांस सभी पुद्‌गल की भिन्न-भिन्न वर्गणाएँ हैं। जैन विज्ञान का ये अति महत्वपूर्ण चिंतन क्षेत्र बनाती हैं।

जिनेन्द्र वर्णी के अनुसार[4] - (1) समान गुण वाले 'परमाणु पिंड' को 'वर्गणा' कहते हैं जो पाँच प्रकार के प्रधान स्कंधों (Aggregates) रूप **त्रिलोक** संस्थान में जीवों हेतु सर्व भौतिक पदार्थों (आहार, पानी, ताप, शक्ति, श्वांस, मल) के उपादान का कारण होती हैं अथवा (2) विशेष जाति की वर्गणाओं से विशेष पदार्थों का निर्माण होता है अर्थात ये किसी विशेष (रासायनिक क्रिया) नियम से अपनी पहचान भी रखती हैं और अपनी 'पुकार' (आवश्यकता) को भी पहचानती हैं। ठीक (आगे वर्णित) Key-Lock सिद्धान्त की तरह (Receptor and Received - Phore) अथवा (3) समगुण वाले समसंख्या तक वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं (परमाणु तथा रबे)। प्रदेश की इकाई रखते परमाणु / अणु

से प्रदेशों की क्रमिक वृद्धि द्वारा वर्गणाओं की उत्पत्ति होती है।

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में तत्त्व (Matter) के सूक्ष्मतम अविभाजीय कण को अणु तथा पदार्थ के सूक्ष्मतम अविभाजीय कण को परमाणु कहा गया है, जो अपने मूल

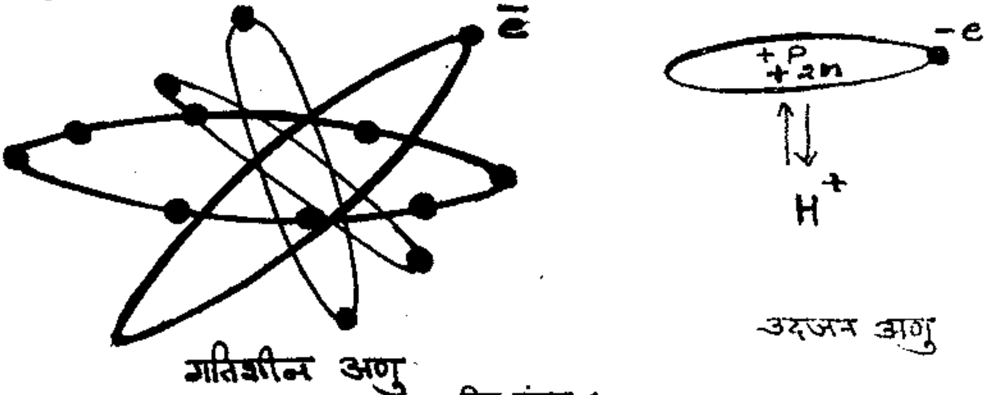

चित्र संख्या 1

पदार्थ से सम्पूर्ण गुण - साम्य रखता है। हालांकि आज का विदित अणु (चित्र - 1) भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रान, न्यूट्रिनो, फोटॉन, अल्फा - बीटा - गामा किरणों में बंटकर बिखर सकता है और परमाणु टूटकर अणुओं में बंट जाता है यथा (चित्र - 2)। पानी का परमाणु तीन

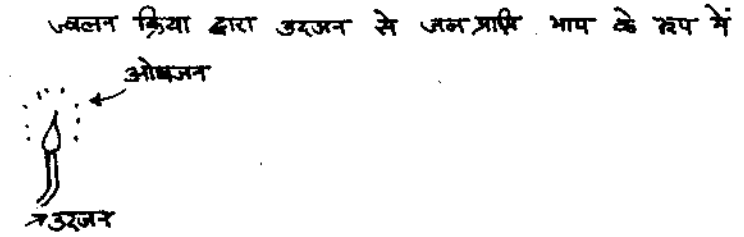

चित्र क्रमांक 2

अणुओं से मिलकर, जिनमें 2 अणु उदजन और 1 अणु ओषजन के हैं, **रासायनिक संयोग** से बना है। भौतिक संयोग इसका निर्माण नहीं करा सकता। 1 अणु ओषजन अथवा 2 अणु उदजन भी जबकि वातावरण में स्वैंयमेव पारस्परिक पहचान द्वारा रासायनिक संयोग *स्थापित कर* अपना - अपना वायु परमाणु बना लेते हैं (चित्र - 3) और अलग - अलग स्वतंत्र

अस्तित्त्व भी रखते हैं अन्यथा इनकी वातावरण में घोर कमी आ जाती। इन प्रत्येक परमाणुओं को

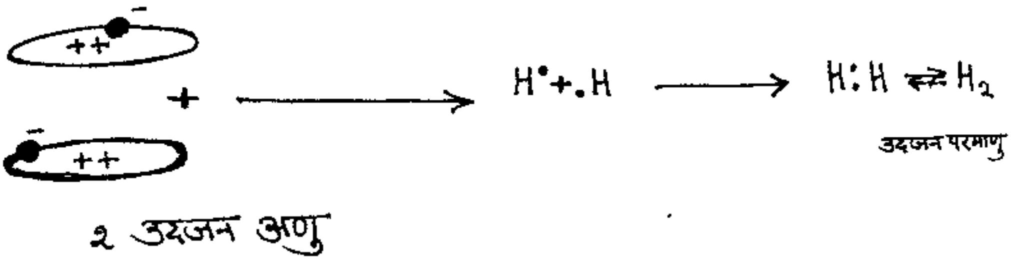

चित्र संख्या 3

जैन दृष्टि से 'वर्गणा' माना जाएगा। स्थिरता पाना इस पुद्‌गल द्रव्य का मूल लक्ष्य है। यही प्रकृति का सिद्धान्त है और यही जीव द्रव्य का भी सिद्धान्त है। समूचे ब्रह्माण्ड की हलचल की सारी उठापटक मात्र स्थिरता पाने की कोशिश में ही बनी हुई है। अणु-अणु में जब तक स्थिरता नहीं है, वह स्पंदित है। उसके केन्द्र में न्यूट्रान, प्रोटान होकर भी अधूरापन, अस्थिरता है। लगातार इलेक्ट्रोन सनसनाते हुए चक्कर लगा रहे हैं ठीक ब्रह्माण्ड में चक्कर लगाते हुए ग्रहों की तरह। सर्व शांत अणु जो परमाणु वर्गणा बना चुके हैं, ठोस (पृथ्वीकायिक) का रूप ले चुके हैं। कुछ जो अब भी शांत नहीं हैं, द्रव (जलकायिक) का रूप हैं तथा वे जो अब भी अशांत और क्रियात्मकता पा रहे हैं, वे वायुरूपी गैसे हैं। इनमें से भी अनेक ऐसे भी हैं जिन्हें आतुरता से वास्ता ही नहीं, वे वायुकायिक होकर भी निष्क्रिय हैं। मेंडलीफ तालिका इन सबों को सरगम के[5] स्वरों सा दर्शाती है। धरती में खनिजों का अस्तित्त्व, शुद्ध धातुओं - पीतल, तांबा, चांदी, सोना, लोहा, एल्यूमीनियम आदि इसी 'वर्गणा' बनाये जाने वाले सिद्धान्त पर आश्रित हैं। परमाणु कभी टूटकर अणुओं में बिखर जाते हैं और बढ़ी प्रतिक्रियात्मकता के आधीन रासायनिक क्रिया कर मिश्र धातुऐं बना लेते हैं। या कभी रासायनिक संयोग करके **लवण** और **क्षार** भी बना लेते हैं। जब-जब परमाणु टूटता है, इलेक्ट्रोन चंचल होते हैं। इस चंचलता में कभी इलेक्ट्रान चंचलतावश बाहर भी फिंक कर अचानक केन्द्र पर ऐसा बोझ डालते हैं कि केन्द्र भी बिखराव में आने लगता है। इससे 'न्यूक्लीयर ऊर्जा' पैदा होती है, न्यूट्रोन टूटता है, फोटोन फिंकते हैं, प्रोटान बिखरते हैं और अणु की आणविक शक्ति प्रदर्शित होती है। आज अनेकों शक्तियों के अलग-अलग उपयोग हो रहे हैं, अणुशक्ति परमाणु शक्ति, रेडिएशन, एक्स-रे आदि से विज्ञान ने भरपूर लाभ पाये और अज्ञानता पूर्ण, प्रमादवश दुरुपयोग किये हैं।

जैन विज्ञान अणु और परमाणु में भेद नहीं मानता क्योंकि अणु अथवा परमाणु किसी भी विभागीय द्रव्य के सूक्ष्मतम 'अविभाजीय' अंश माने गये हैं। इस प्रकार जैन परिभाषित अणु / परमाणु, विज्ञान परिभाषित अणु से बहुत-बहुत सूक्ष्म है। वह वर्गणा नहीं इकाई है अत: उसे देखा अथवा बाधित नहीं किया जा सकता। अनेक समान स्वभावी अणु मिलकर वर्गणा बनाते हैं यथा वायु वर्गणाएँ, द्रव वर्गणाएँ। वर्गणाएँ मिलकर स्कन्ध बनाती हैं। स्कंधों में अनंत अणु भी हो सकते हैं। आकाश ऐसा ही एक स्कंध है जिसमें अनंतानंत प्रदेश हैं। 'संघात तथा भेद से अणु उत्पन्न होते हैं।'[6] आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र में लिखा

है - **अणव: स्कन्धाश्च। भेद सङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते। भेदादणु:। भेद संघाताभ्यां चाक्षुष:।** वर्गणाएँ मिलकर किसी भी दृष्ट / अदृष्ट पुद्गलों का निर्माण करती हैं। जैनागम की परिभाषाओं में प्रदेश आधारित वर्गणाएँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं[7] -

A < (1) अणु / परमाणु की एक प्रदेश इकाई से .... = अणु / परमाणु पुद्गल द्रव्य वर्गणा

B < (2) असंख्यात परमाणुओं की (दो प्रदेशों से संख्यात परमाणु इकाई वाली) = संख्यात प्रादेशिक परमाणु पुद्गल वर्गणा

C < (3) असंख्यात प्रादेशिक परमाणुओं की पुद्गल द्रव्य वर्गणा = असंख्यात प्रादेशिक परमाणु पुद्गल वर्गणा

D < (4) आहार वर्गणा से अनंत और अनंतानंत प्रदेशी = अनंत प्रदेशिक परमाणु पुद्गल वर्गणा
परीत प्रदेशी परमाणु पुद्गल वर्गणा
अपरीत प्रदेशी परमाणु वर्गणा

(5) औदारिक / वैक्रियिक / आहारक शरीर योग्य भिन्न - भिन्न वर्गणाओं से = भिन्न - भिन्न आहारक वर्गणा, जो अलग - अलग विशेष उपयोग में आती हैं / अनंतानंत प्रदेशी

(6) **A B C D** उपरोक्त 5 प्रकार की वर्गणाओं के बीच की उन्हीं साइजों की ऐसी वर्गणाएँ हैं जो त्रिलोक संस्थान में पाई जाती है किन्तु जिनका कोई उपयोग जीवन हितार्थ नहीं बनता दिखता ये ध्रुव शून्य वर्गणाएँ कहलाती हैं। वे भी बहुत उपयोगी हैं इस **संसार का भ्रम** उत्पन्न करने में।

A - एक से संख्यात प्रदेशों वाली ध्रुव शून्य - वर्गणाएँ

B - संख्यात से असंख्यात प्रदेशों वाली ध्रुव, शून्य - वर्गणाएँ

C - असंख्यात से अनंतानंत प्रदेशी ध्रुव शून्य वर्गणाएँ

D - अनंतानंत से विशेष वर्गणाओं तक की ध्रुव शून्य वर्गणाएँ

(7) देव, नारकी, प्रमत्तसंयत, केवली, पृथ्वी, जल, वायु एवं अग्निकायिक ये 8 प्रकार की वर्गणाएँ प्रत्येक शरीर बनाने वाली .... = प्रत्येक शरीर वर्गणाएँ हैं।

(8) बादर तथा सूक्ष्म निगोद बनाने वाली .... = बादर निगोद / सूक्ष्म निगोद वर्गणाएँ जिनका कोई निवास स्थान नहीं है

(कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा, पृ. 234, **पंचसु थावर वियले असणिणिगोदेसु मेच्छकुभ् भोगे॥)**

(9) त्रिलोक संस्थान की एक वर्गणा से = महास्कंध वर्गणा।

विज्ञान ने इन सबों को भिन्न - भिन्न प्रकार के परमाणु (Molecules) कहा है।

कर्मों के उदय से प्राप्त यह हमारा औदारिक शरीर निगोदों की उपस्थिति से 'सप्रतिष्ठित' है। शरीर के रक्त में उपस्थित लाल कण, श्वेत कण, प्लेटलैट्स, त्वचा कोशिकाऐं, पराजीवी सूक्ष्मजीव, अन्य जीव, केश, नख आदि कोशिकाऐं भी हैं। अत: 'प्रत्येक' होकर भी शरीर 'सप्रतिष्ठित - प्रत्येक' हैं। स्वयं निगोद का शरीर भी अप्रतिष्ठित / सप्रतिष्ठित सम्भव है। यथा 'बेक्टीरियोफेजेस' जिनमें वायरस्र लायसोजेनी करते हैं। 'निगोद रहित प्रत्येक वनस्पति' वह पौधे हैं जो न तो कलम किये जाकर रोपे जा सकते हैं ना ही जिन्हें उनके पंचांग में से किसी भी अंग द्वारा उगाया - बढ़ाया जा सकता है। यथा खैर का वृक्ष, धनियाँ, मैथी के पौधे।

उपरोक्त दर्शायी गई 23 वर्गणाएँ हैं जिनमें से मात्र पांच (आहार वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनोवर्गणा तथा कार्माण शरीर वर्गणा) जीवों के द्वारा ग्रहण योग्य हैं। ये सभी अनंतप्रदेशी हैं। शेष बचने वाली त्रिलोक संस्थान में ठहरी हुई चार A B C D प्रकार की ध्रुवशून्य वर्गणाएँ हैं। इनमें कुछ दृष्ट हैं कुछ अदृष्ट। हमारे जीवन के सम्पर्क में आने वाली इन वर्गणाओं (23) का बहुत महत्व है। कुछ हमारे मकान / आवास उपयोगी वस्तुओं आदि रूप हैं कुछ लौकिक जड़ (धातु, पत्थर, मृदा) हैं। कुछ अदृष्ट हैं।

हम श्वांस लेते हुए जो हवा फेफड़ों में खींचते हैं उसमें 1/5 भाग ओषजन रहती है शेष अन्य वायु अंश को हम नाइट्रोजन कहतें हैं भले ही उसमें अन्य भी शामिल रहती हैं। शुद्ध प्राण वायु आक्सीजन तो हमें गैस सिलिंडरों से ही मिल सकती हैं।

प्रत्येक ओषजन परमाणु दो अणुओं से बनी एक वर्गणा है या हम कहें कि एक स्कंध है क्योंकि वह दो अणु वर्गणाओं से बना है। प्रत्येक अणु वर्गणा श्वांस हेतु लाल रक्त कणों द्वारा उपयोग की जा सकती है। सैकड़ों हीमोग्लोबिन परमाणु एक - एक रक्त कण में स्थित हैं। फेफड़ों की रचना जिन झिल्लियों से होती हैं उनमें अत्यंत बारीक रक्त नलिकाओं का जाल रक्त को हल्की त्वचा के अंतर में रख ओषजन पकड़ने में मदद करता है। कोशिका में बैठे एन्जाइम्स (Enzymes) इस प्रक्रिया में वाहक का काम करते हैं और ओषजन लेते हुए कार्बन मोनोआक्साइड बाहर फिंकवा देते हैं। शरीर की अंतरतम कोशिका में इन्हीं एन्जाइम्स के सहारे रक्त कण ओषजन पहुँचाते तथा उत्पादित वायु - मल बाहर लाते हैं। घुलनशील मल गुर्दों, पसीने की ग्रंथियों, नाभि तथा अन्य मार्गों से तथा वसा में घुलनशील मल कान तथा आंतों द्वारा बाहर निष्कासित होता है। अपने शरीर से जनित घातक वर्गणाएँ ही कभी - कभी गुर्दे फेक नहीं पाते। इसलिये रक्त चाप, मधुमेह और अन्य विकारजन्य रोग हो जाते हैं - मांसाहार करने वाले मनुष्यों पर तो उन मांसज वर्गणाओं का भी बोझ पड़ता है इसीलिये मांसाहार को अब विज्ञान भी मान्यता नहीं देता (चित्र - 4 तथा चित्र - 5)। श्वांस प्रक्रिया में कार्य करने वाले प्रत्येक परमाणु के पास **स्पर्शबोध** है जिसके कारण सारी रासायनिक क्रियाऐं सम्पन्न होती हैं। एक लाल रक्त कण के पास सैकड़ों ओषजन ढोने वाले परमाणु हैं तथा प्रति धड़कन, प्रति श्वांस (9x1) ऐसे करोड़ों रक्त कण फेफड़ों में पहुँचाये जाते हैं जो ओषजन पकड़ते हैं। ये सब बादर निगोद वर्गणाएँ कही जा सकती हैं जिनकी 'आयु' अलग - अलग रहती हैं।

ओषजन वायु - परमाणु स्वयं एक बादरनिगोद वर्गणा है, उसका टूटना ही उसकी मृत्यु है तथा कार्बाक्सी हीमोग्लोबिन भी इसी प्रकार स्पर्श बोध वाली बादर निगोद वर्गणा है जो टूटकर मरती है। उसी क्षण अन्य वर्गणाओं वाले निगोदों का जन्म होता है। इसी

प्रकार प्रत्येक ओषजन परमाणु का श्वांस में सहयोग सहज ही 18 बार जन्म और मरण

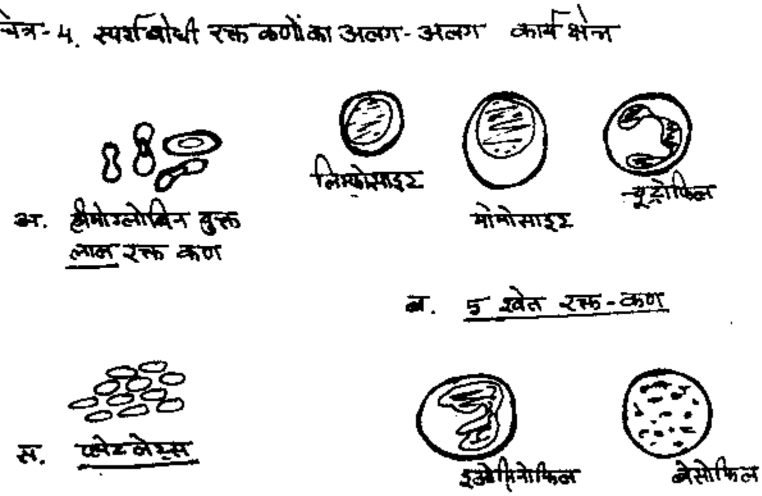

चित्र क्रमांक 4

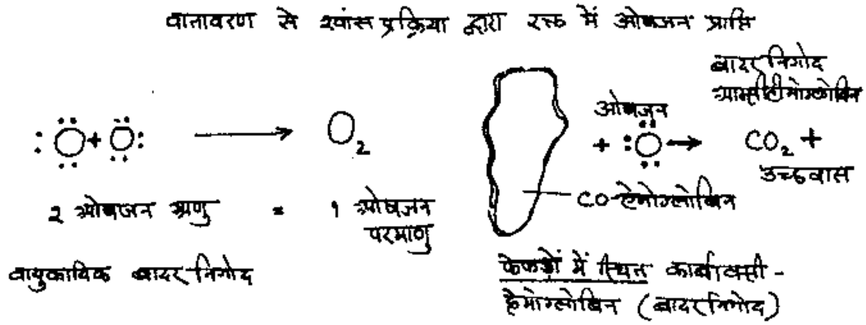

चित्र क्रमांक 5

में निकल जाता है। Crab Cycle (क्रेब चक्र) के परमाणु तथा Redox श्वांस एन्जाइम्स भी इसी में शामिल रहते हैं। इस प्रकार श्वांस की प्रक्रिया बादरनिगोद वर्गणाओं का एक क्रमिक (Chain) जन्ममरण दर्शाता है। चित्र - 5 में ऐसी ही प्रक्रिया प्रदर्शित है जिसके द्वारा पायरोफासफेट बंध द्वारा (~P) ऊर्जा शरीर में प्रतिष्ठित होती है। यह तो रासायनिक संश्लेषण है, इससे हटकर मनोवर्गणाओं का प्रभाव (Psychophore) साइकोफोर द्वारा रसों का निर्माण अर्थात् रस वर्गणाओं का निष्पादन कराता है। उपरोक्त चिंतन को लेकर यदि हम विचारें तो हमारे इस 'प्रत्येक' शरीर के सहारे अनंतानंत 'बादर निगोद' जीवों का जीवन चल रहा है। सारे लाल रक्त कण, सारे श्वेत रक्त कण, सारी प्लेट्लेट्स, सारी त्वचा कोशिकाऐं, वे सारे अवयव तथा कोशिकाऐं जिन्हें हम दान में देकर भी जी सकते हैं यथा नेत्र, गुर्दा, हड्डी, मज्जा, वीर्य और रज, cavities में प्रति पल जी - मर रहे संमूर्च्छन जीव और रासायनिक

समझी जाने वाली सम्पूर्ण एनजाइम वर्गणा - निगोदें मिलकर अनंतानंत हो जाते हैं। जैनाचार्यों ने इन्हें हजारों वर्ष पूर्व अपने सूक्ष्म दर्शन से ना केवल जाना था बल्कि उन अदृष्ट वर्गणाओं को भी जाना था जिन्हें वे मनोवर्गणा तथा कार्माण वर्गणा नाम दे चुके हैं।

यही नहीं, प्रति श्वांस शरीर के अन्दर बैठी अनगिनत जलकायिक वर्गणाएँ (जल परमाणु) वायुकायिक वर्गणाओं में बदलकर (मरण - जन्म से) बाहर फिंक जाती हैं जिन्हें हम सर्दियों में विशेषकर नाक, मुँह से भाप का धुआं बनकर उड़ते देखते हैं। इन सभी के पास 'स्पर्शबोध' है अतः ये सब एकेन्द्रिय जीव' हैं जिनका जन्म - मरण लगातार चालू है। उन्हें अनदेखा करते हुए हम सारा जीवन गुजार देते हैं। हमारा शरीर इन सबों का जीवनाधार रहता है किन्तु हम देखकर भी इन्हें जानते नहीं। यही हमारे नखों और केशों को जीवित रखता है। ये भी अपनी - अपनी अलग - अलग आयु जीते हैं। इसी कारण हमारा शरीर 'साधारण' भी पुकारा जाता है।

इनका स्पर्श बोध ही इन्हें संगठित रखता है और परस्पर का आकर्षण रखता है। आधुनिक विज्ञान सूक्ष्म ठोस कणों के बीच स्थित आकर्षण को Attractive forces कहकर अध्ययन करता है जो वर्गणाओं के बीच वांडरवाल (Keesam और London) शक्तियों के नाम से उन्हें परे फेंकता है। विषम होने पर ही वह आकर्षण दृष्टिगत होता है यथा मैदा या दाल का बारीक आटा बर्तन में 'फलकता' है और बर्तन की दीवारों से जा चिपकता है। जबकि मोटा आटा ऐसा नहीं करता। द्रवों में यही आकर्षण Cohessive और Adhesive शक्तियाँ दर्शाता है। कोहेसिव शक्ति उसे संकुचित करके एक संकीर्ण/संकुचित सतह देती है और द्रव बिखरते नहीं हैं। कम से कम सतह से कम वाष्पीकरण होता रहता है। किन्तु जैन विज्ञान द्रव (जलकायिक), ठोस (पृथ्वीकायिक), भाप (वायुकायिक), ऊष्मा (अग्निकायिक) को इनके स्पर्शबोध के कारण एकेन्द्रिय जीवों की श्रेणी में स्वीकारता है। क्रिस्टेलोग्राफी ने भी स्पर्शबोध को स्वीकारते हुए रबों की निर्माण प्रक्रिया को पहचानने में उपयोग किया है क्योंकि एक ही घोल में से रबे बनाते पदार्थ अपने - अपने 'आधार रबों' पर जाकर एकरूपवर्धना (Plane of Crystalisation) दर्शाते हैं। इसी कारण खनिजों में एकत्रीकरण मिलता है। यह भौतिक परिवर्तन तथा रासायनिक संयोग मात्र ही नहीं, एक पर्याय से 'मृत्यु' और दूसरी में 'जन्म' है। आश्चर्य है कि केवली भगवानों की दृष्टि में यह सब इतनी सूक्ष्मता सहित कैसे उतरा! हमारे जीवन की प्रथम भ्रूण कोशिका से यही घटनायें निरन्तर घट रही हैं जिनमें उपस्थित वातावरण की वर्गणाएँ उनके जन्ममरण से हमें निरन्तर आहार, निर्माण, शक्ति जुटा रही हैं। जीवन की प्रथम श्वांस से यही सब निरन्तर घट रहा है। लगभग प्रति सेकंड एक धड़कन (प्रति श्वांस 9 धड़कनें) यही घट रहा है जिसे हम देखते हैं पर बेपरवाही शांति से।

वायु का प्रत्येक परमाणु, उसमें स्थित ओषजन, नोषजन, उदजन और अन्य अनेकों सब इसी प्रकृति में हमारे आसपास अपनी आतुरता को शेषकर (Quench) तृप्त होकर अपने समप्रकृति अणुओं से जुड़कर, परमाणु बना, स्थिरता को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्निकायिक 'स्थावरों' का बना ये संसार समूचा जाना पहचाना सा होने के बाद भी हमनें 'जड़' समझकर इसकी उपेक्षा की है। इन्हीं के उन्नत स्वरूप वनस्पतिकायिक तथा एल्गी / काई आदि जीव भी हैं। उन्हें भी उपेक्षा दी है। हमारे बीच मानव इतना स्वार्थी हो उठा कि हमारे सह जीव चलते - फिरते, बोलते, चहकते, तिरते भी उन्हें 'जड़' लगने लगे हैं और उन्हें वह मार - मार कर उनका कलेवर खाने लग गया है। जो शिशुवत

रक्षा के पात्र हैं उन्हें असीम यातनाऐं देकर मारने लगा। यह मात्र अज्ञानता और उन्माद है जिसे जैन मतानुसार **प्रमाद** कहा गया है। सबसे अधिक उपकारी जीव वनस्पति की भी उसने घोरतम उपेक्षा की है। फलस्वरूप वह अब उसके स्वयं के अस्तित्व पर भी प्रश्नचिन्ह लगा बैठा है। पर्यावरण संबंधी जाना गया यह दर्शन, जैन दर्शन में जड़ और चेतन के बीच सूक्ष्म अंतर को भेद ज्ञान कहकर बतलाता है। रवे, जिन्हें सामान्यत: जड़ ही समझा जाता है, पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीव माने गये हैं। घोले जाने पर, पीसे जाने पर इन रवों की पर्यायें बदल जाती हैं अर्थात जन्म - मरण हो लिये होते हैं। प्रत्येक बूंद के समस्त जलीय परमाणु 'जीव' हैं। जब वे बहते हुए इकट्ठे हो लेते हैं तब छोटे जलकायिक जीवों की मृत्यु और बड़े जलकायिक जीव का जन्म हो जाता है। जो बहता पानी उसमें से हिमरूप बन अपना द्रवरूप खो देता है वह जलजीवों की मृत्यु और पृथ्वीकायिकों का जन्म है। जितने जल परमाणु वाष्पीभूत होकर उठते हैं उतनी जलकायिकों की मृत्यु और वायुकायिकों का जन्म है। जितने बादल घनीभूत हो वर्षा की बूंदें अथवा ओस बनते हैं उतनी वायुकायिकों की मृत्यु और जलकायिकों का जन्म है। इसी प्रकार लगातार एकेन्द्रिकों में जन्म मरण चलता रहता है। इन सबमें मृत्यु पाने वाला जीव और जन्म पाने वाला जीव एक भी हो सकते हैं और सर्वथा अलग भी। कभी निगोद का ऐसा जीव (इतरनिगोद) मरकर मनुष्य भी बन सकता है और मुनिव्रत धारण कर [8]मोक्ष भी पा सकता है।

प्रत्येक उन्नत जीवन जो आज पंचेन्द्रिय मनुष्य के रूप में अति सामर्थवान दिखता है उसकी कहानी उन 84 लाख योनियों में भ्रमण करने वाली है जिसे जैनाचार्यों ने 'संसार' कहा है। कभी वह क्रमश: एकेन्द्रिय से वनस्पति, फिर दो इंद्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुर्न्द्रिय और पंचेन्द्रिय बना। उसमें भी 9वें ग्रैवेयक तक गया किन्तु इच्छाओं ने उसे पुन: चक्र में फेंक दिया। कर्मों की यही कहानी रही है।

आधुनिक विज्ञान आहार संबंधी वर्गणाओं को कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, जल और लवण नाम से जानता है जो भले ही ठोस खाई जायें, आंतों से वे धुलित स्थिति में ही शोषित होती हैं। त्वचा से वह 'वायु स्थिति' अथवा 'ताप स्थिति' में प्राप्त होती हैं। जैन मान्यतानुसार मुँह द्वारा लिये गये चार आहार (कवलाहार, लेपाहार, रसाहार और जलाहार) माने गये हैं। ये जड़ अथवा, एकेन्द्रिय आधारभूत ही स्वीकार हैं। शाकाहारी भोजन में लहू तथा मांस की लधार नहीं होती। आधुनिक विज्ञान ने जीवन की सूक्ष्मतम स्थिति में प्रोटिस्टों (Protists) को ही माना है जैसे बैक्टीरिया, फंगाई, एक्टीनोमाइसीट्स, मोल्ड्स, खमीर, वायरस, पी.पी.एल.ओ. रिकेट्सी आदि। सर्वप्रथम एंटानी फान ल्यूवानहोक ने एक बूंद वर्षा के जल में नवनिर्मित लेंसों के द्वारा देखा कि असंख्यात जीव जिन्दा हलचल कर रहे हैं। ऐसे रूप जिन्हें पहले कभी देखा भी नहीं गया था। एक अजूबा संसार सामने था जिसे ना तो 'वनस्पति' पुकारा जा सकता था ना 'प्राणी'। एक बूंद में वे सब तैर रहे थे। फिर इस सर्वत्र फैली जल राशि में क्या होगा? तभी गायों तथा भेड़ों में एक अजब रोग फैला जिससे एक - एक कर सारे जानवर मरने लगे। सभी में एक से ही लक्षण थे। उत्सुकतावश उसने एक शव के पेट के पानी की बूंद को लैंसों से देखा। फिर वही तैरते जीव थे किन्तु इस बार सबके सब 'एक जैसे' ही थे। इन्हें Anthrex नाम दिया गया और उस ज्वर को, जिससे वह जीव मरे थे, 'एन्थ्रेक्स ज्वर'। उसके बाद पिछले 200 वर्षों में इन सूक्ष्म जीवों पर बहुत अधिक अनुसंधान कार्य हुए हैं। प्रगति भी आश्चर्यजनक हुई है। इन जीवों का विशाल संसार बहुत कुछ स्थूल में पहचाना जा चुका है। इनके आकार - प्रकार, आहार, प्रजनन, रोग उत्पादक क्षमता, इनके जीवन और निदान, इनसे उत्पादित मल और

विकार, इनके उपयोग आदि सभी खोजे गये हैं, किन्तु अभी भी अति विशाल संसार अनखोजा पड़ा है क्योंकि अति सूक्ष्म है।

ये कुछ 'एक कोशीय' से लेकर 'बहुकोशीय' भी हो सकते हैं। कुछ में उनकी संरचना 'संपुष्ट और स्पष्ट' है, उन्हें यूकेरियोट्स (सच्चा सूक्ष्मजीवी) / Eucaryotes कहा जाता है। कुछ में 'संरचना''अस्पष्ट तथा भ्रामक' है उन्हें Procaryotes/प्रोकेरीयाट्स (विकास लेता सूक्ष्म जीवी) कहा गया है। इनकी विशेषता है कि इनमें 'जीव रस' (Proto Plast) पाया जाता है (देखें चित्र - 6)।

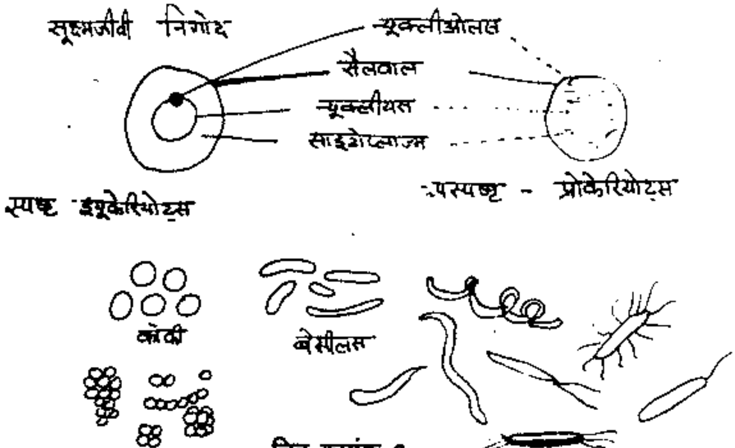

चित्र क्रमांक 6

किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें 'जीव द्रव' नहीं पाया जाता। वे जीवन प्रक्रिया (Metabolism) नहीं दर्शाते (चित्र - 7) बल्कि उनका जीवन पराश्रित होता है जिसे लायसोजैनी (Lysogeny) कहा जाता है।

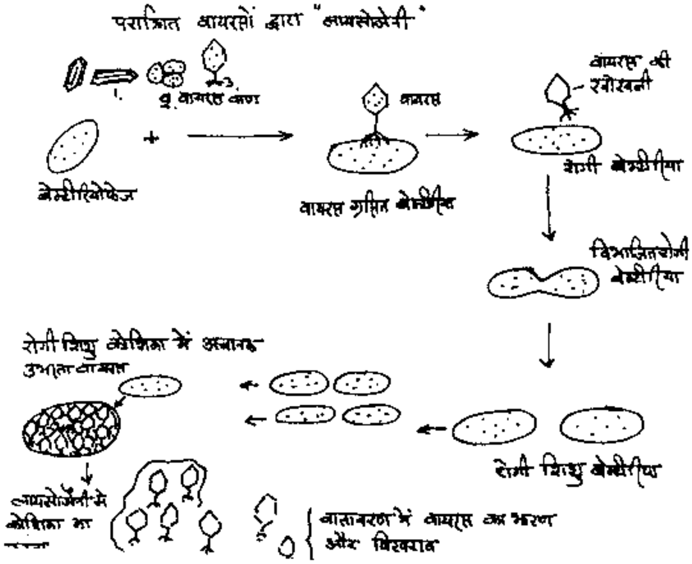

चित्र क्रमांक 7

बैक्टीरिया आदि 'समबंटन' दर्शाते हैं (चित्र - 8) जिसमें आहार वर्गणाऐं संजोती **बेबी** बाढ़ लेकर वयस्क होती है फिर कुछ देर रुककर विभाजित होकर पुन: दो **बेबी** बना लेती हैं।

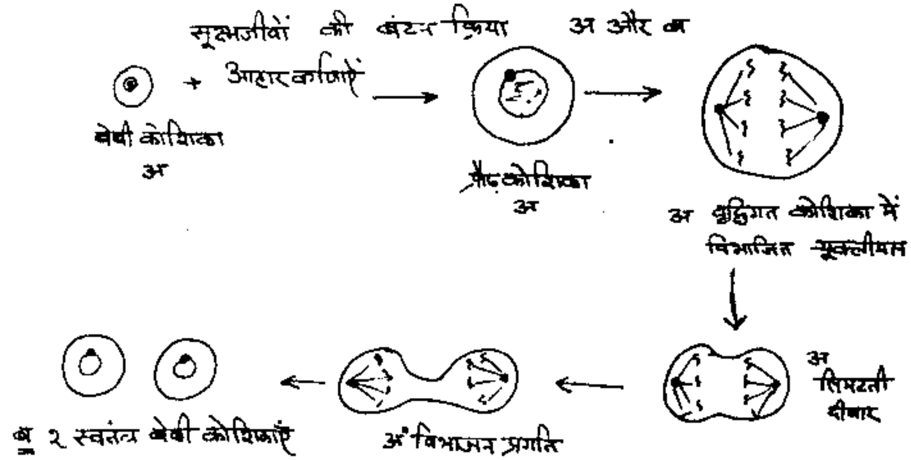

चित्र क्रमांक 8

इस प्रकार वही वयस्क मां होकर पुन: 2 बेबी में समा जाती है। इनके इस विभाजन काल को 'टाओ' कहा गया है जो अति सूक्ष्म भी हो सकता है और परिस्थितिजन्य लंबा भी (चित्र - 9)।

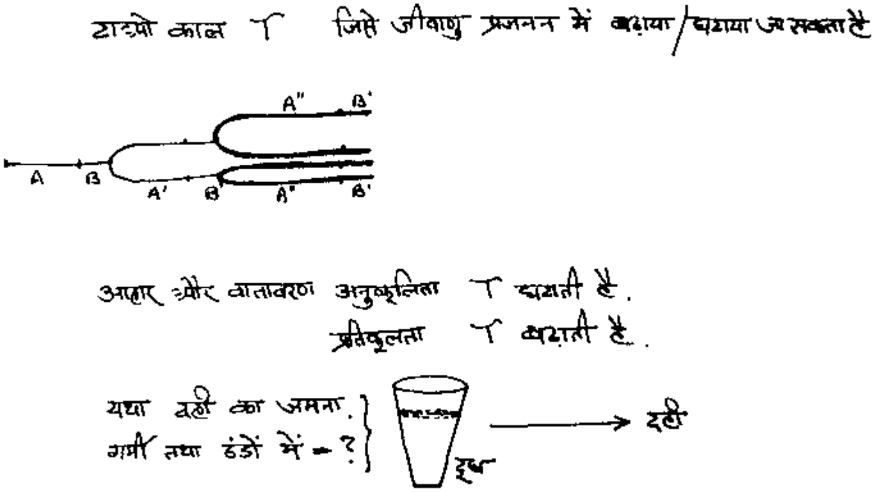

चित्र क्रमांक 9

खमीर में यही प्रक्रिया अनेकों जीवांश द्वारा देखी जाती है (चित्र - 10) जबकि वायरस में

यह 'भ्रामक क्रिया' (Lysogeny) (चित्र - 7) द्वारा देखी जाती है।

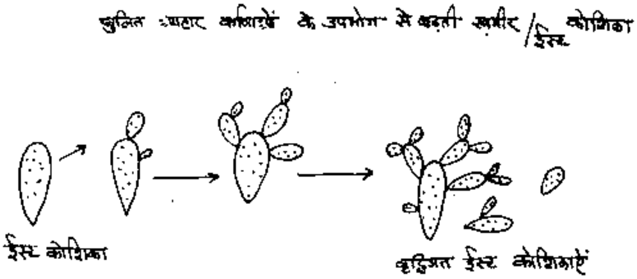

चित्र क्रमांक 10

अनेकों बैक्टीरिया 'स्पोर' और केप्सूल (Spore & Capsules) बनाकर जिस प्रकार मृतप्राय बन छिप जाते हैं और जड़ का सा भ्रम देते हैं वायरस भी वैसा ही भ्रम दर्शाते हैं। इनमें से कोई भी अपने आप स्थान नहीं बदल सकता। ये मात्र द्रव में हलचल करते हैं अथवा शांत भी पड़े रहते हैं। अत: जैनाचार्यों द्वारा इन्हें **स्थावर** कहना उचित ही जान पड़ता है। इनका प्रसारण हवा, धूल, पानी अथवा फुहार (खांसी, छींक आदि) तथा मल - मूत्र - थूक के सहारे होता है। नया आधार पकड़ते ही ये वहाँ से आहार वर्गणाऐं खींचकर बढ़ना और बंटना प्रारम्भ कर देते हैं। वायरस रबों के समान रहते हैं। ये या तो **आर.एन.ए.** परमाणु के होते हैं अथवा **डी.एन.ए.** परमाणु के। दोनों ही जैन सिद्धान्तानुसार 'संख्यात प्रदेशिक परमाणु वर्गणाऐं' हैं। वायरस के रबे अधिकांशत: पौधों, प्राणियों अथवा बैक्टीरिया को आधार बनाकर उनमें अपना सम्पूर्ण रसायन घुलित रूप में प्रवेश करा देते हैं। लंबे काल तक इनके रसायन को सूक्ष्मदर्शी यंत्र अथवा रासायनिक परीक्षण भी नहीं पकड़ सकता। रोगी की पीढ़ियां बिना कोई संक्रमण प्रभाव दर्शाए जीवन बिता लेंगी। फिर अचानक किसी पीढ़ी में इनके 'उत्तेजक साधन' के मिलते ही कोई संतति भीषण संक्रमण के प्रभाव दर्शाने लगेगी क्योंकि आधार कोशिका को फाड़कर ये घनीभूत हो वहाँ फैल जाते हैं। अब ये सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखे भी जा सकेंगे। इसी क्रिया को लाइसोजैनी कहा गया है। ये सभी **बादर निगोद** कहे जायेंगे। पृथ्वीकाय इन जीवों को रबे रूप में 'जड़' किन्तु बाढ़ देखकर 'जीवन' रूप पहचाना जा सकता है।

आश्चर्य तो तब लगता है जब हम पाते हैं कि लावा की अग्नि में भी थर्मोपाइल बैक्टीरिया पाये जाते हैं - भट्टी की भभूदर में भी इन्हें पनपते देखा गया है। तब जैन सिद्धान्त में बतलाये अग्निकायिक और अग्नि जीवों की बात समझ में आती है। जैनाचार्यों ने जीव प्ररूपणा के अंतर्गत जीवों को जिस सूक्ष्मता से वर्णित किया है वह उनकी हजारों लाखों वर्षों पूर्व की ज्ञान उपलब्धियों को दर्शाता है। संयम और व्रतों के अन्तर्गत 'अनर्थदंडव्रत' द्वारा इन सबों की रक्षा की गई थी। 'जीओ और जीने दो' के अन्तर्गत सभी जीवों में 'जीव' द्रव्य को समान सुरक्षा दी थी।

सत्यार्थी - जीवरक्षार्थ सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले सत्यार्थी को जैनाचार्यों ने **सम्यक्दृष्टि** नाम दिया था। अर्थात् जो वास्तविकता को सत्यता से समझे, अन्यथा अथवा प्रमादवश शरीर

को ही स्वयं ना समझें। जन्म मृत्यु में 'ऐन्द्रीक अस्तित्व' को सर्वाधिक महत्ता देकर अनर्थ जीव हिंसा रोकी थी। हमारा स्वयं का भी जीवन बिना श्वांस, आहार, जल के नहीं ठहर सकता इसलिये शक्ति भर अपने पुरूषार्थ के भीतर एकेन्द्रिय जीवों की भी रक्षा रखनी चाही थी। उनका अध्ययन इतनी गहराइयों में उतरा था कि उन्होंने समूचे जीव जगत को उसके इंद्रिय - अस्तित्व पर सुख और दुख की अनुभूति लेने वाली 5 श्रेणियों में बांट दिया। 'एकेन्द्रिय' समस्त स्थावर (वायुकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म तथा बादर निगोद वनस्पति) जिनमें मात्र स्पर्श है तथा जिनमें रक्त तथा मांस की लघार नहीं है, इनके 199.5 लाख योनि स्थान बतलाये गये हैं।[9] द्विइंद्रिय से लेकर पंचेन्द्रियों तक के त्रस / तिर्यंच बतलाये हैं जिनमें मांस की ही उपस्थिति है। 'संज्ञी - असंज्ञी', मन सहित - मन रहित, मनुष्यों तथा शिशुवत वे जीव हैं। 'तत्वार्थ सूत्र' में श्रावक (श्रावकाचार)[10] तथा साधु (मूलाचार)[11] दोनों के जीवन संबंधी नियम बनाये थे।

जैनाचार्यों ने वर्गणाओं की व्यवस्था को संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य की भाव - स्थिति देख इतनी सूक्ष्मता से दर्शाया है कि आज का मेडीकल जगत भी आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहेगा। मनुष्य प्रकृति का सर्व सामर्थ्यवान जीव तो है ही प्रमादी भी वह कम नहीं है। पर्याय बुद्धि के वशीभूत उसे अपने पंचेन्द्रिय सुखों की ओर जाना, उनके लिये प्रयत्नशील होना, स्वाभाविक है। ऐसा करते हुए दूसरे सहजीवियों की उपेक्षा भी सहज संभव थी। किन्तु इस सबमें 'भावकर्म' और 'द्रव्य कर्म' कितना गहरे दलदल में उसे फेंक सकते हैं जहाँ कर्मफल झेलते उसकी यातनाऐं, इसका भी चिन्तन सूक्ष्मता से करा दिया। पुण्यफल से प्राप्त यह पर्याय यदि भोगों ही में शेष कर दी तो पुण्य क्षीण होकर पापकर्मों का फल उसे एकेन्द्रिय जगत में ही चाहे - अनचाहे फेंकेगा और यात्रा का सम्पूर्ण संसार 84 लाख योनियों की भटकान लिये उसे मिल जायेगा। क्योंकि कर्मफल प्राप्ति में अब 'पापफल', वह भी 'असाता वेदनीय' सबसे पहले सामने आकर खड़ा होगा - स्वागतार्थ! कदाचित वही समवेदना को सही - सही पहचानकर, सभी सहजीवियों के दुखों का भी ध्यान रखते हुए अपना ध्यान रखता है तो वह 'सर्वकल्याण' करता है। वही धर्मी है, सम्यकदृष्टि है, सत्यार्थी है।

जैन मान्यतानुसार कर्म (मन द्वारा) वचन किया हुआ वह बीज है जो मन द्वारा इच्छाओं का आधार ले आत्मा की चंचलता का कारण बना। (चित्र-11) बालों में फेरी

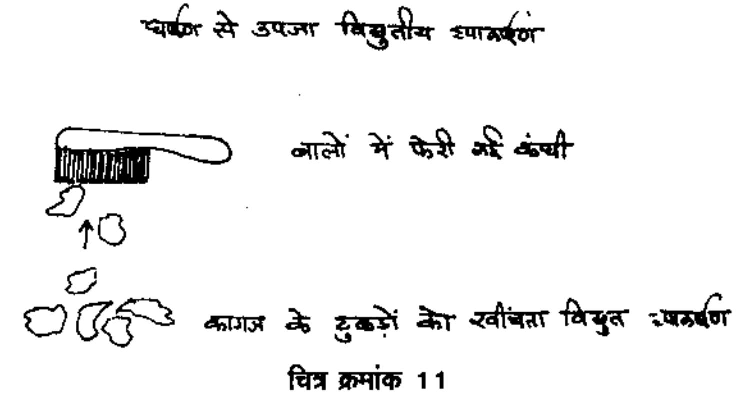

चित्र क्रमांक 11

गई कंघी की तरह आत्मा पर हलचल के कारण 'चार्ज' (आकर्षण केन्द्रों) का निर्माण हो

जाता है मानों कपड़ों पर तेल लग गया हो। ये केन्द्र अपनी-अपनी क्षमतानुसार कार्माण वर्गणाओं को आसपास से ही (कहीं दूर से नहीं) चुन-चुन कर स्थिति, प्रकृति, अनुभाग और बंध के अनुसार क्षेत्रीय संपर्क आ रही वर्गणाओं में से चुन-चुन कर खींचकर बांध लेते हैं। धीरे-धीरे समय बीतते इस बंध की प्रगाढ़ता में ढील आती है। वे बंधी वर्गणाऐं झड़ती हैं किन्तु साथ ही अपना कर्मफल भी चखाती हैं। अच्छी से अच्छी आहार वर्गणा भी दूषित से दूषित मल वर्गणा बन जाती है। स्वाद से ग्रहण की गई वर्गणा भी घोर कष्ट को देते हुए जा सकती है इसे जैन सिद्धान्त अत्यंत भलीभांति जानता है।

हमारे सम्पूर्ण शरीर में जो संवेदना है वह ऐन्द्रिक होकर भी मात्र शारीरिक (Somatic तथा Autonomic और Reflex) आत्मा के अस्तित्व पर आधारित है। क्योंकि आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, इसी कारण सारे शरीर में हमें संवेदन प्राप्त होता है। उसी अंग विशेष में प्रतिक्रिया होती है जहाँ संवेदना प्राप्त होती है। सारे जीवन भर हमें उसी एक **मैं** का बोध इस शरीर में होता है जो बचपन में भी था और यौवन में भी। उसी **मैं** की स्मृतियों में पिछली घटनाओं को लेकर आर्तध्यान और रौद्रध्यान चलता है। जब वह इस शरीर को छोड़कर चला जाता है तब शव ना तो कुछ सुनता है ना प्रतिक्रिया दर्शाता है। वह मन जो इस शरीर और आत्मा पर भी हावी होना चाहता है ना तो वह दिखाई देता है ना ही आत्मा दिखाई देती है।

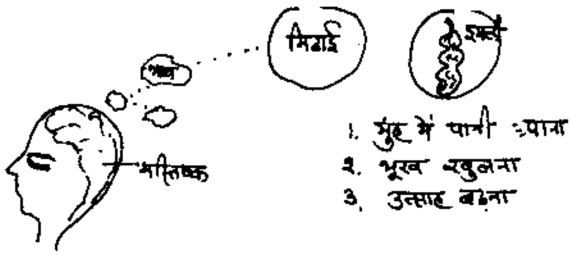

भावमन और भावों का पौद्गलिक प्रभाव / रस निर्माण और स्राव

चित्र क्रमांक 12

(चित्र-12) प्रत्येक 'इच्छा' जो मन से उठती है वह वर्गणा रूप 'भावमन' द्वारा फेंकी पुद्‌गल की फुहार है। यह वर्गणा अति विशाल, महास्कंध सी होती हैं। इसके स्वभाव को आधुनिक विज्ञान 'कीमोथेरेपी'[12] के अन्तर्गत 'ताले-चाबी' सा साम्य रखने वाले 'साइकोफोर' लक्षणों से पहचानता[13] हैं जो 'प्लेसबो' औषधि के बाद प्रकट होते हैं। जब हलचल करती सूक्ष्म वर्गणाऐं जैविक रूप में एन्थ्रेक्स का संक्रमण रूप फलित हुईं तब उनपर प्रभाव दर्शाने वाली अनेकों रासायनिक वर्गणाओं का परीक्षण किया गया। मात्र वही वर्गणाऐं जो ताले-चाबी' जैसा साम्य रखती थीं उपयोग दर्शा सकीं। बाद में थोड़े-थोड़े रासायनिक बदलाव से पाया गया कि रसायन का 'कीमोफोर' ही उस विशेषता का कारण था। राबर्ट कॉख ने तब रोगों को परिभाषित किया। उस परिभाषा के अनुसार (1) जिस रोग विशेष के एक से लक्षण होंगे,(2) उनका संक्रामक जीवाणु एक सा ही होगा, (3) वह एक से ही जीवों पर रोग आक्रमण करेगा। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर बिगड़ती शराबों को जर्मनी और फ्रांस में संभाला गया, महामारियों को रोका गया, प्रसूताओं को सुरक्षा दी गई। औषधियों

की उस खोज ने कीमोथेरेपी को जन्म दिया जिसके अनुसार रासायनिक औषधियों में जिस विशेष वर्गणा में 'ताले - चाबी' जैसी साम्य विशेषता पाई गई उस 'विशेष वर्गणा' को 'कीमोफोर' नाम दिया गया (चित्र - 13) तथा 'रोगाणु' में फंसाने वाली वर्गणा को 'रिसेप्टर' कहा गया।

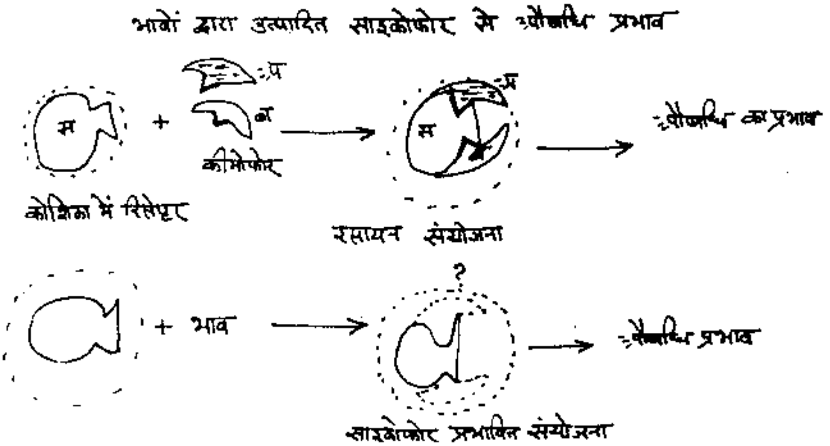

चित्र क्रमांक 13

'कीमोफोर' वर्गणाओं को 'रूप साम्य' के आधार पर उन्नत प्रभावी भी बना लिया गया। बाद में इसी को आधार बनाकर समूची इम्यूनिटी (रोग रोकथाम) थीरेपी के अन्तर्गत 'वेक्सीन' और 'सीरा' तैयार किये जाने लगे। आज की सारी वेक्सीनें इसी आधार पर निर्माण की जाती हैं। बाद में जीवाणुओं की मल वर्गणाओं की भी खोज की गई और पाया गया कि कुछ जीवाणुओं के द्वारा ऐसी भी मल वर्गणाऐं छोड़ी जाती हैं जो अन्य विशेष जीवाणुओं का अंत कर देती हैं। ऐसी वर्गणाओं को एंटीबायोटिक कहा जाने लगा है। कालांतर में (चित्र - 14) अनेकों प्रकार की एन्टीबायोटिक वर्गणाऐं खोज ली गई हैं जिनका रासायनिक

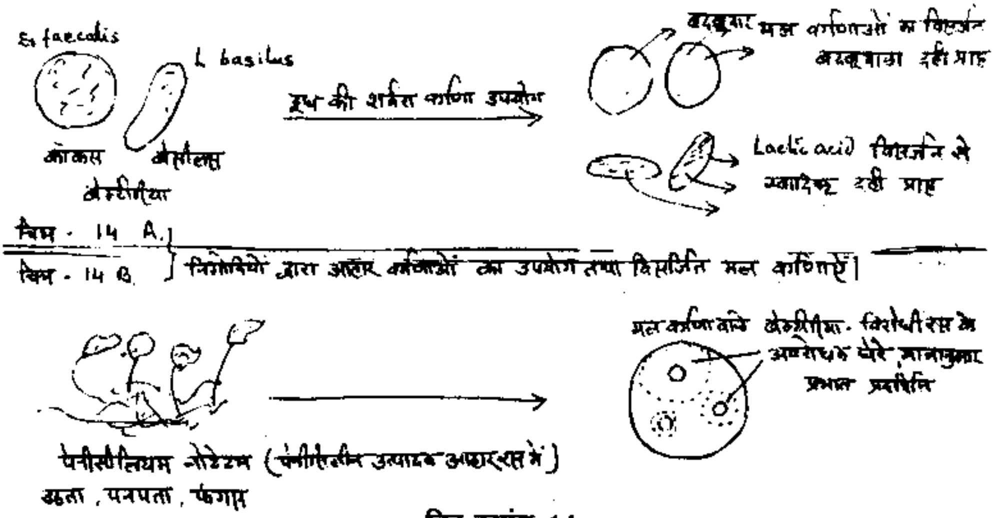

चित्र क्रमांक 14

अध्ययन करने के बाद उन्हीं के 'साम्य - रसायन' की 'अति उन्नत प्रभावी' वर्गणाऐं शुद्ध

रसायन विधि से भी तैयार कर ली गई हैं। इसका एक लाभ तो यही हुआ कि जिन जीवाणुओं से वे वर्गणाऐं उत्पादित होती हैं उनका प्रयोगशालाओं में कठिन 'संरक्षित उत्पादन' नहीं करना पड़ा। दूसरे उस 'मल वर्गणा' को शुद्ध स्थिति में प्राप्त करने हेतु लंबी लागत और मेहनत के बाद भी अधिकांश वर्गणाऐं 'रूप बदलकर' अपना प्रभाव खो देती थीं। तीसरे रासायनिक उत्पादन, जैविक उत्पादन से बहुत सस्ता और मात्रा में अधिक था। जिस पेनिसिलीन इन्जेक्शन की कीमत प्रारम्भ में हजारों डालर थी आज वही कदाचित 'एक रुपये' की भी नहीं है। यह सब कीमोथेरेपी से ही संभव हुआ वर्गणाओं का खेल है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद) प्रारम्भ से ही इन्हीं 'वर्गणाओं' के नियंत्रण (Control) के ऊपर आधारित थी। शरीर के अन्दर 'आहार' द्वारा ली गई 'वर्गणाऐं', ऊर्जा उत्पादन के साथ - साथ कुछ तो शरीर द्वारा ही निर्माण हेतु उपयोग कर ली जाती हैं, कुछ 'मल' बनकर फिंक जाती हैं। यदि ये वर्गणाएँ ना फिंकी तो वे तरह - तरह के विकार शरीर के अन्दर अपने वहाँ छिड़ने से दर्शाती हैं। इसे आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में 'त्रिदोष' के नाम से जाना जाता है जो वात, पित्त तथा कफ कहलाता है। ये तीन प्रकार के लक्षण पैदा करने वाली 'वर्गणाऐं' हैं। वात से रक्त संचालन तथा हाथ - पैरों में व्याधि प्रकट होती है। पित्त से ताप तथा रक्त संबंधी दोष तथा कफ से श्वांस और श्लेष्म संबंधी विकार। तीनों स्थितियों में आहार वर्गणाओं से शरीर के अन्दर ऐसी वर्गणाऐं निर्मित होती हैं जो बड़ी एवं सघन होने से शरीर उन्हें निष्कासित नहीं कर पाता। वे मल रूप होकर भी शरीर में ही घूमती रहती हैं। वात वर्गणाऐं हाथ पैर की सूजन और पीड़ा के रूप में बाधा देती हैं। इन्हें आधुनिक विज्ञान 'ग्लायकोप्रोटीन्स (Glycoprotiens) के नाम से पुकारता है जो संख्या में 1000 प्रदेशी से 8,00,000 प्रदेशी तक की विशाल संभव हैं। इनका स्कंध 'आड़ा तिरछा' होने से कफ अनेकों 'चमीटा' रूप ओरछोर बना कर रक्त को गाढ़ा कर देता है। आयुर्वेद द्वारा इसे शर्करा के उपयोग से (गुड़ तथा राब) घुलनशील और सरल / ऋजु बना दिया जाकर छोटे - छोटे टुकड़ों में काट दिया जाता है। यह 'काटना' इस प्रकार रासायनिक क्रियाओं द्वारा होता है (जिन्हें विज्ञान 4 प्रकार की एन्जाइम[14] क्रियाऐं जानता है - आक्सीकरण, अनाक्सीकरण, हाइड्रोलिसिस तथा कान्जुगेशन) ताकि बड़ी अघुलनशील वर्गणा छोटी श्लेष्म वर्गणा बन कर फिंक जावे। यह विकार तब श्लेष्म बनकर कफ रूप, आंव रूप, नाक के श्लेष्म रूप अथवा योनि श्लेष्म बनकर निकल जाते हैं। कुछ विकार आंख से कीचड़ के रुप में, कुछ अघुलनशील मल चर्मरोगों के रूप में (एक्जीमा) एलर्जी आदि बनकर भी निकलते हैं क्योंकि शरीर इन्हें अपने पास रख नहीं सकता। जब तक यह शरीर में मौजूद रहते हैं ये शरीर की सामान्य बायोरसायन क्रियाओं को पूर्ण नहीं होने देते और भारीपन महसूस कराते हैं। आधुनिक विज्ञान भी अब इन्हें 'म्यूको प्रोटीन्स कहकर पुकारता है और इन्हें शरीर के अन्दर सुचारू बनाने का प्रयास बतलाता है। **आहार** वर्गणाओं का भी इनपर बहुत प्रभाव पड़ता है। आहार वर्गणाओं के साथ हमारे ज्ञान - अज्ञान वश अनेकों उपयोगी, अनुपयोगी तथा विषैली वर्गणाऐं भी शरीर में सहज प्रवेश पा लेती हैं। इनका प्रभाव शरीर तथा मन दोनों पर पड़ता ही है। इसी कारण भारत में सदैव से 'जैसा खाओ अन्न - वैसा होवे मन' कहकर आहार विशुद्धि पर ध्यान दिया गया है।

हम जो थाली में से विभिन्न प्रकार के भोजन करते हैं उनमें मात्र कुछ ही हमारी सत्त्व रूपी **आहार वर्गणाएँ** होती हैं, शेष अधिकांश तो 'छूछना' ही रहती हैं जो मल को 'भार' देकर, वास्तविक **निष्कासित मल को ढो** ले जाती हैं। जो फल और सलाद हम खाते हैं उसमें अधिकांश यही शून्य वर्गणाएँ ही हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान 'फाइबर फूड'

(Fibre Food) कहता है। एक औषधि की टेबलेट में जिस प्रकार अंशों में ही औषधि तत्त्व होते हैं शेष विस्तार देने के लिये Dilutant, वैसी ही हमारे शरीर में आधार देने के लिये शून्य वर्गणाएँ भिन्न - भिन्न प्रकार की व्याप्त हैं - मांस में, हड्डी में, रक्त में। मांसाहार करने वाले व्यक्ति भूल जाते हैं कि जिस अंडे - मांस - मछली को वे आहार बना रहे हैं उसमें मात्र **सूक्ष्म अंशों में** ही उन्हें **उपयोगी वर्गणाएँ** *मिल रही हैं, शेष सब तो शून्य वर्गणाएँ* अथवा घातक वर्गणाएँ हैं जो मल रूप आंतों से फेंक दी जायेंगी। उन **उपयोगी प्राप्त वर्गणाओं** में भी दोषपूर्ण वे सारी शोषित वर्गणाएँ हैं जो पशु के लिये भी 'शून्य' और 'मलरूपी' थीं। आंतों में पड़ी शून्य वर्गणाएँ (मल) उल्टे मांसरूपी होने से घातक वर्गणाओं को उत्पन्न कराती हैं जबकि वानस्पतिक मल की fibre वर्गणाएँ आंतों में सड़कर अपान वायु और उपयोगी वर्गणाएँ दे सकती हैं (Vitamins)! मांसजन्य मल में जीवाणु वे ही जन्मते हैं जो शवों पर सड़ांध लाते हैं (Pathogenes)! ये पेथोजींस अति विकार वाली वर्गणाएँ बनाते हैं जो घातक हैं पर उन्हें आंतें सोख लेती हैं। वानस्पतिक मल पर ये पेथोजींस नहीं जीते (उन्हें मांस की लधार चाहिये)। जो जीते हैं वे पेथोजींस नहीं कमेन्सिल्स (Commensils) होते हैं जो विटामिन वर्गणाएँ पैदा करते हैं उन्हें आंतें सोखकर शरीर में फेंक देती हैं व हम विटामिन भी पा जाते हैं।

जैन मान्यतानुसार संतुलित, संयमित विशुद्ध आहार से भावों द्वारा सम्यकदृष्टि जीव के अन्दर 'Super Power' रिद्धियां - सिद्धियां भी पैदा हो जाती हैं। रासायनिक विशुद्धियों के अन्तर्गत कभी संयोजना, कभी संक्रमण और विपरीतता में कभी विसंयोजना भी होती है। यहाँ आक्सीकरण होने की दशा में संयोजना होकर पारद भी उपयोगी औषधि बना लेता है। उसकी विषाक्तता में 'संक्रमण' से हीनता आ जाती है। किन्तु विपरीतता मिलने पर वही औषधि तत्व वापस पलट कर आक्सीकरण द्वारा विसंयोजित होकर घातकता दर्शाता है। इसी प्रकार मन की विशुद्धि के साथ आहार की विशुद्धि शरीर में ऐसी 'रस वर्गणाओं' का संचार करती हैं जो सभी शारीरिक रासायनिक क्रियाओं को सही दिशा देती हैं। तब शरीर में आत्मा की विशुद्धि के कारण न केवल पुण्य - कार्माण वर्गणाओं का संयोग होने लगता है बल्कि संक्रमण द्वारा पिछली पाप - कार्माण वर्गणाओं के उपयोग और प्रभाव की दिशा भी बदल कर क्षीण प्रभावी बन जाती है। प्रायश्चित तथा तप, रसों को सुखाकर इसमें सहयोगी बनते हैं। जिस प्रकार आहार, जल, वायु तथा उपयोग / संपर्क में आने वाली वर्गणाऐं कभी - कभी किसी किसी व्यक्ति को एलर्जी पैदा करती है। (Histamine) हिस्टामिन का रस स्राव कराकर त्रिरूपी दोष दर्शाती हैं और उनके ऊपर एन्टीहिस्टामिनिक वर्गणाऐं ताले - चाबी सा प्रभाव दर्शा कर दोष समाप्त करती हैं। उसी प्रकार इन कार्माण वर्गणाओं का प्रभाव भी देखने में आता है। पुण्य प्रभाव अर्थात् सुखकारक संयोग और पापप्रभाव अर्थात् दुखकारक संयोग बदलने लगते हैं। जैनाचार्यों ने इन भाव वर्गणाओं से उपजी परिस्थितियों को अति सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। जिस प्रकार औषधि - वर्गणाऐं प्रभाव देती हैं उसी प्रकार रत्नत्रयी (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) सद्भाव, शुभभाव और धर्मभाव भी सारी 18 प्रकारी वर्गणाओं पर औषधि रूप प्रभाव रखते हैं।

प्लेसबो (Placebo) थीरेपी में औषधि नहीं साइकोफोर के प्रभाव से रोगी स्वस्थ हो जाता है। प्रसन्न मन रहते शरीर को भूख - प्यास सामान्य लगती है, रक्त चाप सही रहता है। ममतामयी मां का दूध अमृत बनकर शिशु को पुष्ट करता है। वही मां यदि दुखी होकर रोती बिलखती है तो न केवल दूध सूखता है बल्कि शिशु को अपच और हानि का कारण भी बनता है। कदाचित मंत्र सहित भभूत, भस्मादि का भी ऐसा ही प्रभाव

रोगियों पर देखने में आता है। इससे स्पष्ट होता है कि भावों द्वारा जो मानसिक उद्वेलन व्यक्ति के शरीर पर प्रभाव दर्शाता है (क्रोध, विलाप, स्तब्धता) वह अपना उद्वेलन प्रभाव आत्मा पर भी फेंकेगा। कवि तथा साहित्यकारों ने इन्हीं उद्वेलनों को नवरस (हास्य, रति, क्रोधादि) के रूप में अंतरंग पैदा हुए **भाव - रस** बतलाते हुए इनकी प्रभावकता को सिद्ध किया है। भावों द्वारा आत्मा पर उत्पन्न विशेष आतुरता केन्द्र (उपलब्ध) द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, भव के अनुरूप अपनी विशेष योग्य वर्गणाओं को ग्रहण करा लेते हैं। बलि दिये जाते समय पशु के भय और आर्त भावों से उसका मांस कितना विषमय हो जाता है यह सोचे जाने की बात है। इसीलिये भारत में शाकाहार ही स्वीकार था।

सामान्यत: जैसे भाव होते हैं तदनुरूप विचार बनते हैं और उन्हीं के अनुकूल वाणी अथवा शब्द उच्चारित होते हैं। मन का टेढ़ापन वाणी के टेढ़ेपन के रूप में सामने आता है। शब्द भी ध्वनि - वर्गणाऐं हैं। जैनाचार्यों के अनुसार शब्द की यात्रा तरंग रूप में मन से तभी प्रारम्भ हो जाती है जब वह नाभि के नीचे 'पराबात' ऊपर आने वाली वायु बनता है। नाभि पर पहुँचने पर उसे 'पश्येति' तथा हृदय तक आते उसे 'मध्यमा' कहा है। इस प्रकार तरंग रूप ही उसे तीन स्थानों से गुजरते हुए जब कंठ में आना पड़ता है तब वह **स्वर** भी बन सकता है और 'बैखरी' **शब्द बनकर** मुँह से उच्चारित भी हो सकता है। उस शब्द का अर्थ / संकेत होता है। हवा में तैरती वह ध्वनि भी 'तरंग' ही रहती है जिसे आज तरंगों स्वरूप ही कैसेट्स में प्लास्टिक फीते पर ध्वनि संकेतक से उकेरकर पुन: दोहराते हुए सुना जा सकता है। शब्द सही ना हुए तो अनर्थ भी हो जाते हैं, सदमें पहुँच सकते हैं। मरते हुए व्यक्ति को भी वे संजीवनी बन सकते हैं। यह सब शब्द - वर्गणा (ध्वनि) का प्रभाव है जो आत्मा द्वारा मन में (इच्छा से) उठाई जाती है और उसी के द्वारा सतह पर प्रभाव डाल 'स्मृति' बन ठहर जाती हैं। उस वर्गणा के रहते, श्रुत ज्ञान (जो कि हल्के स्तर का ज्ञान भी है) रहता है। अन्य वर्गणाओं के साथ इसके भी झड़ने पर जब वर्गणाओं के बादल छंटते हैं तो अवधिज्ञान और अधिक छंटने पर मन:पर्यय ज्ञान तथा समस्त ज्ञानावरणी वर्गणाओं के हटने पर 'केवलज्ञान' अपने सम्पूर्ण तेज के साथ प्रगट होता है। वर्गणाओं की यह धूल अथवा बादल हटाना बहुत बड़ा (सबसे बड़ा) पुरुषार्थ माना गया है।

सम्पूर्ण वर्गणाओं का बोझ आत्मा पर से हटने पर ही वह मुक्त होती है। यही तीर्थंकरों, केवलियों, भव्यों का लक्ष्य रहा है, ज्ञानियों की चेष्टा रही है, तपस्वियों की साधना रही है। अन्यथा तो जिसका जितना बड़ा वर्गणाओं का घेरा है उसका उतना ही लम्बा और विस्तारमय संसार है। वर्गणाओं के ऊपर वर्गणाओं का घेरा पहाड़ सा बनकर आत्मा को गहरे दलदल में डुबा देता है। गृहस्थ और साधु दोनों इस दलदल से उबर सकतेहैं। मात्र दया और करुणा उनका सहारा होते हैं। इस विश्व में सदैव से इन्हीं 'दया' और 'करुणा' के सहारे संसार और संसरण चल रहा है वरना कभी का यह विश्व विनाश हो जाता। क्योंकि अज्ञानियों ने इसमें हिंसा फैला रखी है। जिसे वह हिंसा नहीं मानता मूल में वह भी हिंसा ही निकलती है जब कि ज्ञानी और साधु के द्वारा प्रकट में '**कदाचित अनजाने हिंसा**' होकर भी '**अहिंसा**' ही पलती है। जैनधर्म ने सदैव से इसी जीवदया का सहारा लेकर इसे ही आगे बढ़ाया है। आज का सहजीवी अस्तित्व, पर्यावरण और वैयक्तिक जीवन सब इसी पर निर्भर है '**अत: यह मानवधर्म ही नहीं जीव धर्म भी है और विश्व धर्म भी।**'

वायरसों, पी.पी.एल.ओ.,रीकेट्सियों और सूक्ष्म जीवाणुओं (बेक्टीरिया) को निगोद कहा

जा सकता है। भले ही जैन मान्यतानुसार 'निगोद' देखे, बांधे नहीं जा सकते। साधारण चक्षु से ये देखे नहीं जा सकते किन्तु इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप से 2लाख से 10 लाख गुना किये जाने पर वे देखे जा सकते हैं किन्तु बांधे नहीं जा सकते। इनकी आयु की सीमा नहीं है क्योंकि ये मरते नहीं हैं। ये सरकते, चलते भी नहीं हैं मात्र संपर्क पाते ही रासायनिक क्रियाओं द्वारा आहार संजोने में जुट जाते हैं। इनमें बेक्टीरिया चलते फिरते नहीं हैं। जिस रेखा में (खड़ी या आड़ी) विभाजित होते हैं उसी में फैलते प्रतीत होते हैं। इन्हें विस्तरण हेतु आहार चाहिये। मक्खी/मच्छरों के पैरों से ये लिपटकर भी तीव्रता से फैलते हैं। खुला मल, कटे फल, बिना ढंकी खाद्य सामग्री को ये दूषित करते हैं।धूलकणों के साथ उड़कर ये हमारे चेहरे, हाथों, सिर, नाक, आँख, मुँह और कपड़ों पर छा जाते हैं। हमारे 'सोला' वाले नियम ने इनसे हमें बहुत बचाया है। ये उबालने पर भी नष्ट नहीं होते।

मच्छरों, मक्खियों के काटने से जो सूक्ष्म जीवी जीव (Parasites) पैरासाइट बनकर हमारे शरीर में आ जाते हैं वे निगोद नहीं (जैन मान्यतानुसार), त्रस जीव हैं, एमीबा की तरह। कभी-कभी ये पंखों-पैरों के सहारे भी हमारे आहार तथा कटे फलों में आ सकते हैं। इन्हें उबालने पर नष्ट किया जा सकता है। इनकी भी प्रजनन प्रणाली निगोदियों से साम्य रखती हैं किन्तु ये प्राणीजगत का सूक्ष्मतम प्राणी हैं ठीक पानी में तैरते हरे कणों, एल्ली की तरह जो सूक्ष्मतम **वनस्पति** है। निगोद इन दोनों से अलग प्रोटिस्ट जगत का सूक्ष्मतम अंग कहे जा सकते हैं जो सूक्ष्म भी हो सकते हैं और बादर भी। जो नित्य भी हो सकते हैं और इतर भी। है न जैनाचार्यों की सूक्ष्म दृष्टि का कमाल?

सन्दर्भ सूची -

1. नथमल टांटिया, दैट व्हिच इज, SLT 1994
2. मेंडलीफ की पीरियाडिक तालिका - रेमिंगटन फार्मास्यूटिकल साइंसेस, अंतिम पृष्ठ
3. आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थ सूत्र, 5/23,24
4. जैनेन्द्र सिद्धान्तकोष, भाग-3, पृ. 511, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1996
5. Text Book of Chemistry, बोकड़िया
6. आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थ सूत्र, 5/25,26,27,28
7. धवला, पुस्तक-7, वर्गणाखंड, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर
8. आचार्य नेमिचन्द्र, वृहदद्रव्य सार संग्रह (टीका, पृ. 84-85)
9. आचार्य कार्तिकेय स्वामी, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा, पृ. 234
10. आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरंड श्रावकाचार
11. आ. वट्टिकेर, मूलाचार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
12. कीमोथेरेपी, रेमिंगटन फार्मास्यूटिकल साइंसेज
13. स्नेहरानी जैन, साइंटिफिक कन्सेप्ट आफ माइंड एण्ड जैन व्यू, श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल अभिनंदन ग्रंथ, 1998, रींवा, म.प्र., पृ. 405-410
14. हार्पर की टेक्स्ट बुक आफ फिजियालाजी

प्राप्त - 13.7.99

ज्ञानोदय पुरस्कार - 99 की घोषणा

श्रीमती शांतिदेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 में की गई है। वह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलत: यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत पुरस्कार राशि में वृद्धि करते हुए वर्ष 2000 से प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र / पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान् को रुपये 11000/- की नगद राशि, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

वर्ष 1998 का पुरस्कार रामकथा संग्रहालय, फैजाबाद के पूर्व निदेशक **डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी** को उनकी कृति **'जैन धर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य'** पर 29.3.2000 को समर्पित किया गया।

वर्ष 1999 का पुरस्कार प्रो. हम्पा नागराजैय्या **(Prof. Hampa Nagarajaiyah)** को उनकी कृति **'A History of the Rastrakutas of Malkhed and Jainism** पर प्रदान करने की घोषणा की गई है। यह पुरस्कार शीघ्र ही समारोह पूर्वक प्रदान किया जायेगा।

वर्ष 2000 से चयन की प्रक्रिया में परिवर्तन किया जा रहा है। अब कोई भी व्यक्ति पुरस्कार हेतु किसी लेख या पुस्तक के लेखक के नाम का प्रस्ताव सामग्री सहित प्रेषित कर सकता है। चयनित कृति के लेखक को अब रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी।

चयनित कृति के प्रस्तावक को भी रु. 1000/- की राशि से सम्मानित किया जायेगा। वर्ष 2000 के पुरस्कार हेतु प्रस्ताव सादे कागज पर एवं सम्बद्ध कृति/आलेख के लेखक तथा प्रस्तावक के सम्पर्क के पते, फोन नं. सहित 31 जनवरी 2001 तक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001 के पते पर प्राप्त हो जाना चाहिये।

जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में रुचि रखने वाले सभी विद्वानों/समाजसेवियों से आग्रह है कि वे विगत 5 वर्षों में प्रकाश में आये जैन इतिहास/पुरातत्त्व विषयक मौलिक शोध कार्यों के संकलन, मूल्यांकन एवं सम्मानित करने में हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

Vol. - 12, No. - 4, October 2000, 49 - 59

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

JAINA PAINTINGS IN TAMILNADU

■ T. Ganesan*

The painting tradition of Tamilnadu is going back to the magalithic age, probably belonging to the black and red ware culture or even earlier, in Tamilnadu. The paintings of Kilvalae and Padiyandal in South Arcot district Vettaikkaranmalai in North Arcot district etc. are the important paintings in Tamilnadu but are considerably late. The Jaina paintings of Sittannavasal are the earliest available paintings that have been studied by the scholars like T.N. Ramachandran, C. Sivaramamurti, T. Baskaran and the D.Lit. thesis of R. Chanbakalakshmi and also my Ph.D. thesis on Jaina Vestiges in the South Arcot district. All these studies conducted by the above scholars did not cover the Jaina paintings of Tamilnadu. This article may provide to the need of the scholars of Jainism, who may be interested particularly on paintings.

The paintings of Sittannavasal datable to the 9th century A.D. belong to the Pandiyan period and the paintings of Armamalai and the early trace of paintings of Tirumalai and Tiruparuttikunram, found in the Pallava region are also datable to the same 9th century A.D. The early face of the painting found in the Rishabhanatha temple at Peramandur and the middle phase of the Tirumalai and Torappadi Jain temples are belonging to the Chola period. The paintings of Tirumalai and the late phase of Tirupparuttikkunram Jaina temple and the middle phase of the Rishbhanatha temple at Peramandur are belonging to the Vijayanagara period.

The painting of Vidur, Kallakolattur and the late phase of the painting of Rishabhanatha temple at Peramandur are belonging to the Nayak period. The paintings of Chandranatha temple and Rishabanatha temple (4th phase) of Peramandur and the painting of Chandranatha temple at Kannalam are belonging to the post-Nayak period. There are three types of techniques that have been employed in these paintings. *Tempera technique* is employed in the paintings of Sittannavasal, Armamalai, Cholavandipura, Permandur (Rishabhanatha temple), Tirumali, Tiruparuttikkunram, Kannlam and Vidur. The *Fresco technique* is applied in the paintings of Thorappadi. The *Water Colour technique* is used in the paintings, found in the Chandranatha temple at Peramandur. The paintings of Cholavandipuram and Kallapuliyur are mostly damaged except the samavasarana of Kallapuliyur.

* 101, North Main Street, Thanjavur, Tamilnadu.

ARMAMALAI PAINTINGS :

Armamalai is a hillock, situated nearly 2 K.M. from Malayampattu village in Gudiyattam Taluk in North Arcot district. There is a natural cavern on the top of the hillock, used as a hilly resort of the Jaina munis. A mud wall was served or used to avoid natural disturbance. The paintings are found on the mud walls and on the ceiling of the cavern. These Jaina paintings are datable to the 9th century A.D.[1]. It was reported first by Robert Sewell in 1882 A.D. and summerized by C. Minakshi in 1939[2]. The colours used in these paintings are ochre, green and black. R. Nagasamy considers that the depicted paintings are the *ashtadikpalas,* the guardian deities of the eight directions.[3] They are not *ashtadikpalas* as suggested by R. Nahasamy. According to Jaina tradition,[4] there are ten guardian deities *(dasadikpalas)* producting the eight directions and heaven (upper world) and also the earth (Lower World) The paintings, painted are devided into nine houses. The centre one may represent the heaven, while other eight represent the eight directions. Most of the paintings on the ceilling are damaged. Only two boxes are with the paintings. The south eastern one is Agni, riding on a coar, and the southern one is probably Yama ridding on a baffalo. The paintings found on the mud wall also fully damaged, except the face of the human figure. Probably, he may be represented as a guardian deity of the earth while the wall is represented as the earth.

SITTANNAVASAL

Sittannavasal is a village, situated about 16 K.M. north west of Pudukkottai in the Pudukkottai district in Tamilnadu. It was a flourishing Jaina centre from the early part of the christian era, as evidenced by a Brahmi inscription found on a hillock of the village Sittannavasal. The paintings are found on the ceiling of the *garbhagrha,* outer *mandapa, podikas* and *kodungai* of the pillars of the rock-cut temple at Sittannavasal. Two stages and layers of paintings were noticed in 1942, when Dr. Paramasivam and K.R. Srinivasan were engaged to clean these paintings.[5] The new paintings are superimposed on the old one. As an inscription of 9th century A.D. describes that the rock-cut temple and the *ardhamandapa* and *mukhamandapa* were renovated by a teacher of Madurai Ilan-Gaudaman, the later stage of the painting may belong to the 9th century A.D. while the early stage of paintings particularly found on the sculptures, probably were of much earlier period.

The lotus tank, found on the ceiling is known as one of the dreams of the mother of Mahavira before his birth, according to S.R. Balasubramaniyam[7]. In this tank, the fishes, elephants, (photo No. 1), baffalo and two men are gathering flowers, (photo Nos. 2 and 3) found on the two opposite sides with

the flowers and flower baskets. R. Nagasamy[8] describes that the lotus flowers stand firmly against illusion and the disturbance, given by the others like an absolute soul *(Jiva)*. T.N. Ramachandran[9], describes that it is found in the Jaina *dharma* story. The circular and square designs, found on the ceilling of the front *mandapa*, symbolically represent the *dharmopadesa* of Mahavira and his interpretation to his ganadharas like Indrabhuti Goudama, Agnibhuti and Vayubhuti.

There are three painting figures, found on the southern side of the pillar, near the entrance. A royal person, a queen and a saint. T.N. Ramchandran and R. Nagasamy consider that the royal persons are the Pandya King Srimaran with his queen.[10] It is not true. Probably it is a depiction of the story of Rishabhanatha with King Shreyansa and his wife. The other scene is of that of witnessing the dance performance of Nilanjana the chief dancer of Rishabha court with other nymph, whose paintings are found on the northern side of the pillar. The third figure, probably a Laukantikadeva, who told the right time to Rishabhanatha for *diksha*. T.N. Ramachandran[11] mentions that their dances are *aladham* and *vivardhigam* or *pujankajitam*, or Bharadh's *natyasastra*, respectively But R. Nagasamy suggested that *aladham* mentioned by T.N. Ramchandran is either *Urdhvajam* or *ladhavrchigam*.[12]

TIRUPARUTTIKKUNRAM

Tiruparuttikkupram known as Jinakanchi is a village situated nearly one K.M. west of Kanchipuram in Chengleput district in Tamilnadu. There is a Jaina temple dedicated to Chandranatha. This temple was originally built by Rajasimha pallavamalla, around 6th century A.D.. The sand stones, found in this temple also reflect the same.[13] . But the present structure is mostly belonging to the later Chola period.

There are two stages of paintings, found in this temple. The first stage of the paintings is enlighted by Professor Norman Brown of Philadalphia University in 1927.[14] . T.N. Ramachandran[15] considers that these paintings may belong to the 7th century A.D. and are comparable with the paintings of Sittannavasal in Pudukkottai district. These paintings are found on the ceiling of the *sankita mandapa* (photo No. 4) of this temple. The colours used are deep red, yellow, pink, black and gray. In these Priyakarini, the mother of Vardhamana is shown in the labour pain with two attendents helping her. Next, Vardhmana was taken to *Janmabhisheka* by Airavadha. One of the miracles of Mahavira was shown in the next painting. Sanagamam his foe, and a deva was twisting around the tree, while Vardhamana was standing near by. There are two women riders on the horse back, depicted on the other painting panal.

The second stage of the paintings are belonging to the Vijayanagar period, found on the ceiling of the *sankitamandapa, mukhamandapa, mahamandapa* and *ardhamandapa* of this temple with the table illustration. The classification of the paintings are made on the basis of the classification made by T.N. Ramchandran in his book *Tiruparuttikkunram and its temple*, to avoide the confusion to the scholars. According to him, there are 84 paintings panals found in this temple. Among them, 37 are narrating the story of Rishabhanatha, 18 are about Krishna and his cousin Neminatha, the twenty second Tirthankara, 25 are on Mahavira and two other paintings viz. Neminatha with his attendents and Brahma Yaksha.

THE STORY OF RISHABHANATHA :

The life history of Rishabhanatha is painted in the 37 painting panals. He is the first Tirthankara of the Jaina pantheon. Before his present birth his previous ten births viz. 1. Jayavarman of Indrapuri Vidhyadhara king Mahabhala 3. Lalithanga of Isana-Kalpa 4. Vajrangha of Utpala Khetapura 5. Sridhara 6. Suvidhi, 7. The king of Susima city of Vatsa territory 8. Achutendra of Achyutakalpa, the sixteenth heaven 9. Vajranabhi in Pundarikini city in Jambudvipa, ruled over by Pushkalavati and 10. A deva called Ahamindra, whose size is in one cubit are shown. (Painting No. 1-10) There are three Kalpa Vrkshas, viz. 1. Bhojananam (food giving tree) 2. Bhajanangam (vessel giving tree) and 3. Vastrangam (cloth giving tree) are painted next. (Painting No's 11-13). Rishabhanatha was born in his eleventh birth to Nabhi Maharaja of Ayodhya and his queen Marudevi. (Painting Nos. 14-17). After his birth, Rishabha was taken for the *Janmabhisheka* (celestrial bath) to the mount Meru by the Soudharmendra and Isanendra and was taken back to Ayodhya for the naming ceremony. (Painting Nos. 18-20). He married two wives namely Yasaswathi and Sunanda and had 100 sons starting with Bharata and a daughter Brahmi to Yasaswati and Bhabubali and Sundari to Sunanda. (Painting Nos. 21-23). Kalpavrakshas disappeared. Rishabha came to the power. He classified the families *(vamsa)* like Guruvamsa and he himself belonged to the Ikshavaku *vamsa*. (Painting Nos. 24-25)

Rishabha enjoyed the worldly pleasures. Once he witnessed the dance performance of Nilanjana with the two nymphs on both the sides, where he realised the immaterial outer world. (Painting No. 26). The Laukantikas namely Aristan, Avyabadhan, Tushitan, Gardhaloyan, Arunan, Vanhi, Adityan, Sarasvatan, tell the right time to Rishabha to *diksha*. Rishabha went to forest by a Sudarsana *vimana* and meditating in the Chandrakandasila (ummon stone slab), with his subordinate kings like Kacha and Mahakacha who became unbelievers. (Photo

No. 6) (Painting Nos. 27 - 29) Nami and Vinami the sons of Kacha and Mahakacha respectively come to Rishabha to share the territory for them both. Dharanendra stopped them (photo No. 7) and gave the kingdom to the both. (painting Nos. 30 - 31)

Rishabha came for food (Biksha) six months after his severe penance in the forest. It is symbolically represented in the auspicious dream of Sreyansakumara, the younger brother of Somaprabha, the founder of the Guru dynasty and the ruler of Hastinapur. Rishabha came to Hastinapur and accepted the cane juice, offered by Sreyansakumara and Somaprabha and then he returned to the forest, (photo No. 8) (painting Nos. 31 - 35). Rishabha, became a world teacher and preached in the *Samavasarana*, built by the *devas*. Soudharmendra (Indra) of the first heaven made his dance performance with joy which is painted at the end of the story. (painting Nos. 36 - 37)

THE STORY OF KRISHNA AND NEMINATHA

The painting Nos. 65 to 82 are narrating the story of Krishna and Neminatha. Krishna was a maternal cousin of Neminatha, the twenty third Tirthankara. Kansa was the enemy and maternal uncle of Krishna, ruled over Madurapura with his queen Jivadyasa, a step daughter of Kalindisena. Devaki was his younger sister, given to marry to Vasudeva in the presence of Kansa and Jivadyasa. Krishna was born. (painting No. 65) Baladeva receives Krishna, while Vasudeva holding white umbrella. As soon as the guardian deity of the city in the form of bull with the horns of gems, opened the gateway, the river Yamuna itself gave way by its own accord. Baladeva handed over the child (Krishna) to Nanda, a cowherd. (painting No. 66) Kansa commissioned seven spirits, to kill Krishna which came on the form of wheel Palmye tree, horse, ass and a milk feeding mother and then his strength was tested by a Deva in the form of bull, Krishna overcome all while he was searched by the Baladeva, Vasudeva and Devaki, (painting No. 67)

Once, Krishna saved all including his foster father by lifting a mountain. (painting No. 68) There was a snake in a tank. The people feared to go there. Krishna plucked up the lotus eventhough the snake came to bite him. (painting No. 69) Again Kansa sent an elephant to kill Krishna. Krishna twisted the tusks of the elephant and driven it out. Krishna killed Kansa with the plan given by Baladeva and Vasudeva at Madurapura. (painting No. 70) Knowing this, Jarasandha, sent his sons Aparajita and Kalayava to fight with Krishna. Krishna was defeated at the hands of Kalayava and took shelter at Dwarawati, an island in the sea, built by Gautamadeva (Painting No. 71 & 72)

At Dwarapuri, Sivadevi narrated her dream to her husband Samudravijaya,

the uncle of Krishna. Sivadevi gave birth to Neminatha (Painting No. 73) After his birth Neminatha was taken for the celestrial bath and was taken back to the city, where he was named (painting No. 74)

Krishna gave up his kingdom to Neminatha to look after untill his return. Then Krishna fought with Jarasandha and was praised as Chakravartin by the devas, Vidhyadhara, and the kings of the other world (painting No. 76) After the victory over with Satyabhama the wife of Krishna in *Jelakirta*, Neminatha looks Trivikrama and below counch in his feet as the world pleasure. (painting No. 77). Neminatha's marriage was fixed with Ratrimati, the daughter of Ugrasena and Jayavati. Neminatha was taken in procession to the marriage hall (painting No. 78), where Neminath's announcement of renunciation. Neminatha attains *nirvana* and was taken to Sahasramravana by a palanquin, called Devaguru (painting No. 80 & 81). Again after his severe penance, he accepted the food offerings of Varadatta, the king of Dwaravati (painting No. 82). Then he went to forest and attained *kevelignana*, with attitude of *samparyanka* in the *samavasarana* which was created by the *devas*.

THE STORY OF VARDHAMANA

The story of Mahavir is also painted on the ceiling of the *sankitamandapa* of Tiruparuttikuram Jain temple. In this, Priyakarini, the queen of Sidhardha narrated her dream to her husband (painting No. 38). Vardhamana was taken to Janmabhisheka after his birth by a procession to Mahameru (painting No. 39-40). The devas participated in this procession with the flags and musical party (photo No. 9) (painting Nos. 41 and 42). Vardhamana was given bath with the celestrial waters brought from the *kshirabhu* (ocean of milk), while Vardhamana was sitting on the *simhasana* (in the cross for photo No. 10). He was taken back to Kundapura by an elephant, Airvatha (painting No. 43 & 44) Sangama a deva tested his strength (painting No. 45). Vardhamana went forest to *diksha* on hearing the address of the Laukantikadevas by a palanquin (photo No. 11) (painting No. 46). He took initiation and plucking out his hair by his own right hand and took penance for six months (painting No. 47). After that, he went to the village called Kulagrama and accepted the food offered by the king of Kulagrama (painting No. 48). He attained *kevelgnana* and was worshipped by the devas of Gandhakuti, a part of *samavasarana*. The procession of Ananda by Garuda, Sukra by swan, and other *devas*, riding on the buffalo, horse, khadgo (rhinoceros), Makara, elephant, tiger and deer with the flags and the celestrial damsels with *ashtamangalas*, the Bhavanavasi *dvas* and other six damsels to the *samavasarana* (painting Nos. 49-55) The materials of honour such as flowers, lamps, *kudavilakku* and *kalasas*, are

carried by the celestrial ladies which was followed by the dance by celebrating the *kevelgnana* of Mahavira. Vardhamana was sitting in the *samavasarana*, which consisted of venues konwn as Asoka, Champaka, Chuta and Saptachanda for the four kinds of audience viz. Ganadharas, kalpavasi *devi*, Aryikas and Sravakis respectively (painting Nos. 60-63)

THE STORY OF AGNILA (AMBIKA) (DHARMADEVI)

The life incedent of Agnila is found on the beams of the Varandha, facing the *samkitamandapa*. The story of Agnila is found in the *Punyasrava Katha*[16] . Agnila, the wife of Somasraman had two children. Once, she offered food to an ascetic, Varadatta. Knowing this, Somasraman drove his wife out of his house. She went out to Urjayanta hill, left her two children to her attendent and committed suicide by falling from the top of the hillock. In her next birth, she got born as Ambika, Yakshi of Neminatha (painting Nos. 83 & 84).

TIRUMALAI

Tirumalai is situated 10 k.m. north west of Polur. There is an image of Jaina Tirthankara, Neminatha, 16.5 height on the hillock situated near by the village. The Jaina paintings are found on the ceilling, and walls of the cave, on the sculptures of Bhahubhali, Neminatha etc. and on the brick walls, depicting the monks, floral designs, geometric designs, *samavasarana* etc. C. Sivaramamurti[17] mentions that these paintings are datable to the Chola period. R. Nagasamy[18] suggested that the brick structure itself datable to the early Vijayanagara period. R. Nagasamy[19] codified that some insignificant traces and paintings painted on the rock-cut images may belong to the chola period.

A full blossom of lotus design (Photo No. 12) is painted on the ceiling of the room No. 4, in the Neminatha Jain temple. The series of *hamsas*, triangular designs are painted on the south wall of the room No. 4 (Photo No. 13). On the same wall an image of Yakshi is painted (Photo No. 13) whose figure is not clear except her head. She wears *karandamakuda* on the head *kriveyahara, sarabali chavadi*, on the neck, kundala on the ears and *skandamala* on their shoulders. There is another painting found on the same wall of the same temple (Photo No. 114). In this there are two *munis* painted, sitting in the opposite sides on the bed like *tindu*. The head of the *muni*, sitting on the right side is missing. He is showing vyakyana mudra in his left hand and holding flying wisks on his right hand. Another *muni*, sitting opposite to him, is listening his preach. His right hand is damaged while his left is holding flying wisks. Both the *munis* are in the nude with the long lobbed ears and curled hair. There is a book stand in between the

two *munis*. The monch of three *munis* are painted on the lower part of the painting. The painting of one *muni* is not visible and damaged while other two *munis* are not visible. They are holding flying wisks in their right hand and *kamandalu* on their left hand. They are with curled hair and long lobbed ears. The flowers like designs and series of *hamsas* painted on the top represent peace and joy. The paintings found on the north wall of the room No. 2 (photo 15) is an image, mostly damaged, wearing right hand is holding chakkara while his left is holding probably couch (not visible). This may belong to the chola period. The paintings found on the west wall of the room No. 2 (photo no. 16) in the Neminatha temple is probably the Yaksha of Neminatha. He is wearing *kritamakuta* on the head. He has four hands. He wears ornaments of *sarabali, chavadi, kriveyahara* and a long chain on the neck, *skandamala* on the shoulders, *khetaka* and bangles on the hands and *kundala* on the ears. He wears lower silk garment. His upper right hand is holding something which is not clear, while his lower one shows, *abhaya mudra*. His upper left hand is missing and his lower left is not clear. The flowers, creaper and *hamsa* series are painted on the top of the painting, found on the west wall of the *mahamandapa* of the Vardhamana temple with a painting of flowered designs (Photo No. 17)

PERAMANDUR :

The painting executed on the ceiling of the *samkitamandapa* of Rishabhanatha temple at Paramandur, belongs to the Chola period as employed by the Tempera technique.

These are painted on a plaster. Colours were mixed with gun and applied on a dried lime plaster base. The colours used are white, black and yellow. The first phase is executed during chola period. In this, a Naishtiga Bramachari (Photo No. 18) is with his outstretched hands, wearing a white lower garment, blessing a *sravaka*, whi is kneeling before him. A women in saree is in standing with flowers, near to him, probably offering flower to the Brahmachari.

The second theme (Photo No. 19) is represented by three musicians playing on long musical instruments *(Kombu)*. They wear a long garment. Another male figure is shown with folded hands with a white lower garment, in the *panchakacha* fashion. Two men with flower baskets are shown near him.

The third theme (Photo No. 20) is shown with a drummer playing with a drum, *naiyandimelam*, near to him, a man is standing and playing *nadhaswaram (pipe)*. Two dancers are playing in front of a royal person, whose identification is not clear, probably Rishabhanatha.

Another panel is much damaged. A chariot rider and a fighting scene

is shown nearby.

The second phase of the painting is seen on the ceiling on the same place. It seems to have been painted over the chola paintings. A *Manastambha* (Photo No. 21) has been painted separately on the ceiling. It is painted with blue pigments.

The painting of *samavasarana* (Photo Nos. 18-21) scence is shown with nine circles. The first or the outer most circle has *dhwajas, radhas* and *Jinalayas*. The second circle has fishes, crocodiles, crabs, elephants, lotus and lilly flowers, swan, *Iral* (prawn) and other marine creatures representing the sea. The third circle has flowers. The fourth has a series of trees and bushes with triangular and circular boulders. Some of them have inscriptions in the 16 or 17th century characters. The fifth circle has a series of flags. The sixth one has trees. The seventh one has Jinalaya, the eighth one has *sravakas* and *sravikas*, the ninth circle or central one has four *dharmachakkaras* on the four entrances to the circle, which is said be the world of enlightenment. There are four entrances on its four cardial directions cutting through all the circles. Four *manastambhas* are painted at the entrance to the outer circles, of which, one, painted on the western side, is the biggest. There are four entrances shown on the four directions of the circles. All the entrances have the *gopuras*. Eight such *gopuras* are depicted along the circles. There are steps, shown on the outer entrances. A *dwajasthambha* is on the southern side and two *manastambhas* are in the outer entrance, which have motives of *sikhara* and *Kalasa* on the top and has two dhwajas facing oposite directions.

They are painted with blue pigments.

In the southern side, a seated Saraswati is painted (Photo no.22). It is the third stage on a small boulder with four hands and wears a *karandamakuda*. She holds the *Vina* in the right arm, a bundle of palm leaves in the left. She is wearing a white saree. Her vehicle peacock ils standing near (close) to her. She is planked by two *Chauri* bearers. Close to the above painting, there are four Vidhyadharas on the four corners with four hands and a pair of flying wings painted on the lotus petal design. These paintings may belong to the 18th century A.D.

The Chandranatha temple of Peramandur has some paintings on the inner walls of the *garbhagriha*. They may have been painted in the 18th century A.D. These paintings are not visible now. In the beginning of this century, these paintings were covered by a lime coating by the rennovaters. According to the local people, the story of Virasenacharya 1 the author of Melchittamur temple and *matha* is being depicted in the painting.

THORAPPADI

The fresco technique of painting employed on the *Uttara* of the *sangitamandapa* of the Pushpadanta temple (Photo No.23 at Thorappadi, is datable to the Chola period. A tree is painted in between two lotus designs. Two Tirthankaras in the *Kayotsarga* posture and the two others, seated in the *dhyana* posture are painted. They have long ear lobes. Another painting depicts a lilly design. Near to it, there is a muni in a preaching posture, probably may be, Rishabha or the Ganadhara. The colours used are yellow, red and green.

VIDUR

The Rishbhanatha temple at Vidur has a series of 30 panels of paintings found on the ceiling of the *mukhamandapa*. It is datable to 17th century A.D. These paintings narrate the history of the first Tirthankara Rishabhanatha. Each panel represents the events and the life history of Rishabahanatha. These paintings are painted on the lime plaster. The colour pigments have been mixed with gum and water. Inscriptions of the 18th century characters are written below each panel. The painting panels start from the south eastem corner of the *mukhamandapa* where four standing women attendants are depicted. In the second panel, the Gods *(devas)* including Soudharmendra,after learning the birth of Rishabha *(swami)* travels to Ayodhya. In the third panel, Lord Rishabha is taken by the elephant called Aravata for the sacred bath. In the fourth panel Rishabha is seated in the *dhyana* posture on a *padmapitha* in the *pandugasilai mandapa*. The gods are carrying sacred water in the pot on their sides. The fifth panel, depicts a dance sequence, symbolically representing the joy and creation (Photo No.24). In the sixth panel lord Rishabha is shown performing *puja*. The seventh panel depicts marriage scene of Rishabha. In the nineth panel, Rishabha is depicted on a swing with his two wives (Photo No.25). Sunanda and Yasasvati. The tenth panel depicts the dream of Yasawati. In the eleventh panel she is asking Lord Rishabha, the meaning of the dream. The twelveth panel depicts Rishabha in the preaching attitude.

In the thirteenth panel Rishabhadeva is shown preaching his daughters Brahmi and Sundari. In the fourteenth panel the performance of the puja of Lord Rishabhanatha is shown. The fifteenth panel, shows the eastablishment of Nagavamsa (Ugravamsa) Guruvamsa etc. The head of Guruvamsa is conducting *pujas*. The sisxteenth,depicts the dance of Apsaras, witnessed by Rishabha. In the seventeenth panel, the eight Gods of upper world *(devas)* receiving Rilshabha by the Nilanjanailaya, In the eighteenth panel, he is shown carried in the *vimana* by the kings. In the nineteenth panel, Vidhyadharas are taking

lord Rishabha to the upper world.

In the twentieth panel, the Gods *(devas)* are carrying Rishabha on their shoulders to the Degashavana. In the twenty first Rishabha is shown under going penance. In the twenty second is shown that the Devendra and Amayasa (Abharanadis) are enjoying the ocean of milk (kshira). In the twenty-third panel, Lord Rishabha and others like Karayogeser are standing and performing *yoga* (Photo No.26). In the twenty-fourth panel, the king Chakravarti (Bharata) is returning after getting blessings. In the twenty-fifth panel Marisakumaras, the grand son of Rishabhanatha and the son of Bharata and Anandhamati and others are doing *midhatapas*. In the twenty seventh panel, Dhamendra is taking Nami and Vinami, by a *vimana* (Photo No.27) to share the kingdom to them. The twenty eighth panel is not clear. In the twenty-nineth panel, Rishabhanatha is in the *samavasarana* including his *Ganadhara*. In the thirtyth panel Bharata Chakravarti is returning to his country to rule over it.

KANNALAM

The Chandranatha temple of Kannalam has a painting on the ceiling and the carbal of the pillars (Photo No.28) of the *mahamandapa*. It is painted on a lime plaster. The colours were mixed with water and gum and applied. The colours used are mostly, red and black. Most of the paintings were damaged. They are mostly of a lotus design. It is datable to the 19th centrury A.D.

References

1. T.Baskeran, Lalit Kala No.16 Madras. Page.22.
2. Ibid.
3. R.Nagasamy, Oviyapavai, Madras. 1979.p 86.
4. T.Ganesan, Jaina Vestiges in the South Arcot district, Ph.D,. thesis 1990,p.115.
5. T.N.Ramachandran, Lalit kala, No.9, Madras.(April 1961) p. 36.
6. Ibid, P.37.
7. R.Nagasamy, op.cit, P.97.
8. Ibid.
9. Ibid, P.98.
10. Ibid, P.96.
11. Ibid.
12. Ibid.
13. T.Ganesan, 6 p.cit. p.101.
14. T.N.Ramachandran, Tiruparuttikunram and its temple, Madras P.162.
15. Ibid.
16. Ibid. P.157.
17. R.Nagasamy, 'Jaina Art and Achitecture under the Cholas; U.P.Shah and M.A.Dhaky (Eds), Aspects of Jaina Art and Architecture, Ahemdabad, 1975,P.135.
18. Ibid.
19. Ibid.

Received - 10.1.97

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर होने वाले शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रुचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने से एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 30 नवम्बर 2000 तक पुस्तकालय में 8050 महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं 1042 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ सम्मिलित हैं ही। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 350 पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओं से : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों (पुस्तकों / लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रन्थालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से संचालित प्रकाशित जैन साहित्य एवं जैन पांडुलिपियों के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

30.11.2000

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

Vol. 12, No. - 4, October 2000, 61 - 66

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indore

ON THE QUADRATURE OF A CIRCULAR ANNULUS

■ Dipak Jadhav *

In his cosmographical treatise, *Trilokasāra*[1] (abbreviated as TLS, 'An essence of three regions of the universe), *Nemicandra*[2] (c. 981 A.D.) produces, in Prakrit, the following rule *(gāthā)* of great geometrical interest.

लवणंबुहिसुहुमफले चउरस्से एक जोयणस्सेव।
सुहुमफलेणवहरिदे वट्टं मूलं सह स्सवेहगुणं॥ (TLS, v.103, p. 95)

The above rule rendered into Sanskrit runs :

लवणाम्बुधिसूक्ष्मफले चतुरस्रे एकयोजनस्यैव।
सूक्ष्मफलेनापहृते वृत्तं मूलं सहस्रवेधगुणम्॥ (TLS, v.103, p. 96)

Translation : Quadrilating *(caturastre)* the subtle area *(sukṣmaphala)* of the *Lavaṇa* sea *(Lavaṇāmbudhi)* ; divide (the square of the area) by (the square of) the subtle area of the circle of diameter one *yojana*. Take the square-root (of the quotient) and then multiply (the result) by the effective height *(vedha)* of (measure) 1000 *(yojanas)* (to calculate the numbers of the *kuṇḍas* [cylinders] of diameter one *yojana* and depth one *yojana*).

In this paper, we will concentrate upon the following statement only.

लवणाम्बुधिसूक्ष्मफले चतुरस्रे

Translation : Quadrilate the subtle area *(sukṣmaphal)* of the *Lavaṇa* sea *(Lavaṇāmbudhi)*.

In Jaina cosmography, it is supposed that the *Jambūdvīpa* (*Jambū*-Island) and *Lavaṇa* sea are of diameters one lac (abbreviated as 'l') *yojanas* and 5l *yojanas* respectively (cf. Figure 1 - Next page).

Thus the *Lavaṇāmbudhi* (salt sea) is circular annulus in shape and is of inner diameter 1l *yojanas*, outer diameter 5l *yojanas* and breadth 2l *yojanas*.

It can be inferred from the above statement that *Nemicandra* knew how to quadrilate a circular annulus but did not set down its process.

* Research Scholar - Kundakunda Jñānapītha, Indore, Lecturer in Mathematics, J.N. Govt. Model H.S. (Residential) School, Barwani - 451 551 India

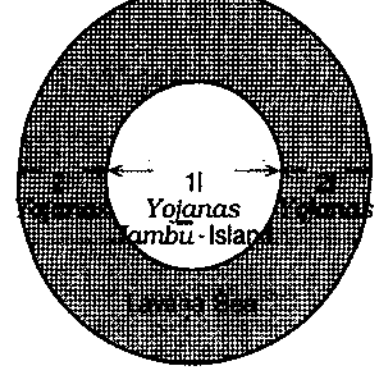

Figure 1 : The annular region of the *Lavaṇa* sea.

In his Sanskrit commentary on the TLS, *Mādhavacandra Traivaidya*, an immediate pupil[3] of *Nemicandra*, gives the process for the same under the above rule in the following words (Cf. TLS *[Viśuddhamati]*, p. 98 and TLS [Manoharlalji], p.45) :

लवणाम्बुधिवलयं ऊर्ध्वं छित्वा रुन्द्र (2 ल.) प्रमाणेन विषमचतुर्भुजं कृत्वां "विक्खंभवग्ग" इत्यादिना मुखसूक्ष्मफलं (1ल. 1ल.10) भूमिसूक्ष्मफलं (5ल.5ल.10) चानीय मुखभूम्योस्संस्थाप्य मुखभूमिसमासार्धमिति मध्यफलमानीय (6/2ल.6/2ल.10) मध्ये संस्थाप्य उपरितन भागे ऊर्ध्वं छित्वा चतुस्रार्थ व्यत्यासेन समानच्छेदेन मेलनं कृत्वा अपवर्तिते एवं 6ल.6ल.10 रुन्द्रार्धेन (1ल.) गुणिते सति "वर्गराशेर्गुणाकार भागहारा वर्गात्मिका एव भवंति" इति न्यायेन गुणिते सति चतुरस्रं स्यात् (6ल.6ल.10)।

Translation : Cutting the annulas *(valaya)* of the *Lavaṇāmbudhi* (salt sea) at its vertex and then making it an isosceles trapezium *(viṣama caturbhuja)* of altitude as equal to its breadth *(rundra)* ; get the (subtle measures of the) face *(mukha)* (1l.1l.10) and base *(bhūmi)* (5l.5l.10) by the rule *'vikkhaṁbhavagga'* etc. Get the mean measure *(madhya phala)* by halving the sum *(samāsa)* of the face and base and then establish it. Cut vertically the upper part (of the isosceles trapezium). For quadrature *(caturastrārtha)*, place both the upper sections inversly and alterably *(vyatyāsena)*. Equalize the denominators. Multiply 6l.6l.10 by half of the breadth *(rundrārdha)* (1l) by the rule *'vargarāśe'* etc.; it would be (the area of) a rectangle *(caturastra)*.

From this almost literal translation of his passage, it is seen what *Mādhavacandra* wants to say. However this passage needs an especial exposition with accompanying diagrams. In her Hindi commentary, *Āryikā Viśuddhamati* (cf. TLS, pp. 97 - 99) has done this job.

This paper is aimed at bringing out *Mādhavacandra's* process for the quadrature of a circular annulus.

His process, with the help of her exposition and with some improved diagrams, is as follows :

Cut the annulus of the *Lavaṇa* sea at its vertex as shown below (cf. Fig. 2) -

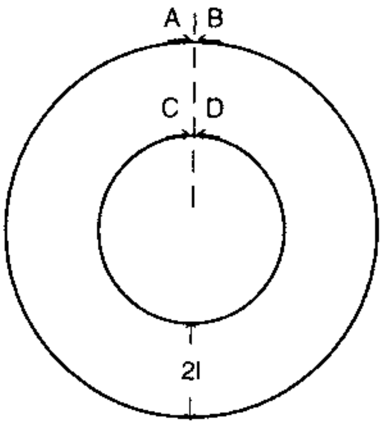

Figure 2 : A circular annulus penetrated at its vertex

and then make it straight keeping its breadth (rundra) 2l as it is (cf. Fig. 3).

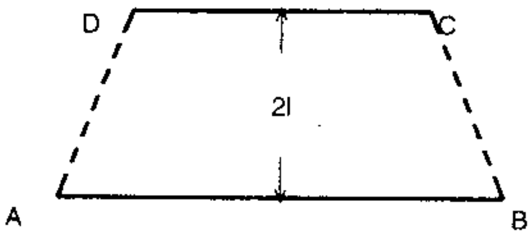

Figure 3 : An Isosceles Trapezium with its altitude

Thus it becomes an isosceles trapezium *(viṣama caturbhuja)*.

'विक्खंभवग्ग' इत्यादिना

The square of the diameter *(viṣakambha)* etc.

The complete rule is like this :

विक्खंभवग्ग दहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होदी। (TLS v.96 first half, p. 88)

The square root of ten times the square of the diameter becomes the circumference *(paridhi)* of a circle.

By this rule, find the subtle measures of the face *(mukha)* DC (= $\sqrt{1l.1l.10}$) and base *(bhūmi)* AB (= $\sqrt{5l.5l.10}$) of the isosceles trapezium in quadratic forms viz. DC = 1l.1l.10 and AB = 5l.5l.10.

Halve the sum of the measures of the face and base to calculate the measure *(madhya phala)* ($\frac{6}{2}l.\frac{6}{2}l.10$) of the mean side EF and then draw it.

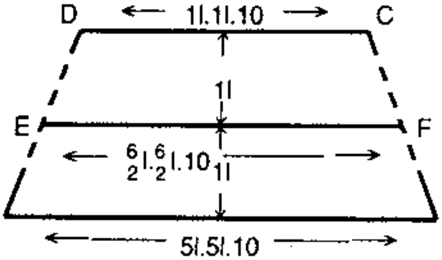

Figure 4 : An Isosceles Trapezium with its mean side EF.

Cut the upper part of the isosceles trapezium vertically as shown below (cf. Fig.5) :

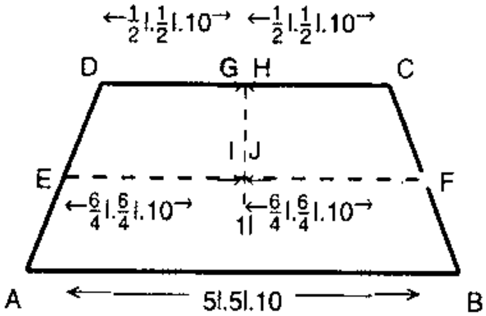

Figure 5 : An Isosceles Trapezium penetrated vertically at its upper part

Place both the upper sections of the isosceles trapezium inversely and alterably *(vyatyāsena)* with EABF in such an order so as to be a rectangle *(caturasra)* as shown below (cf. Fig. 6) :

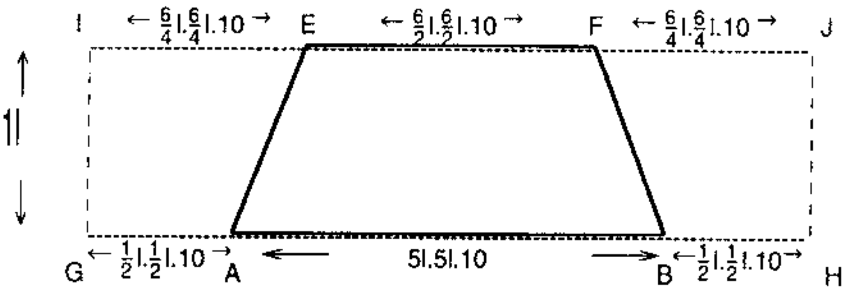

Figure 6 : A rectangle formed

Calculate the quadratic measures of the sides of the rectangle by equalizing the denominators of their measures being in parts.

IJ	=	IE + EF + FJ
	=	$\frac{6}{4}l.\frac{6}{4}l.10 + \frac{12}{4}l.\frac{12}{4}l.10 + \frac{6}{4}l.\frac{6}{4}l.10$
	=	6l.6l.10
GH	=	GA + AB + BH
	=	$\frac{1}{2}l.\frac{1}{2}l.10 + \frac{10}{2}l.\frac{10}{2}l.10 + \frac{1}{2}l.\frac{1}{2}l.10$
	=	6l.6l.10

Therefore,

the quadratic length *(bhuja)* GH (or IJ) = 6l.6l.10

and

the quadratic breadth *(koṭi)* GI (or HJ) = 1l.l.

The quadratic area of the rectangle = GH.HJ

= 6l.6l.10.1l.l.

= 6.6.10.l.l.l.l. square *yojanas*.

वर्गात्मकराशेर्गुणकार भागहारो वर्गौ भवतः। (TLS v.122 second half, p. 136)

The (result of the) multiplication or division of quadratic quantities always becomes quadratic,

By this rule, the required area is equal to $6\sqrt{10}$ l.l square *yojanas*.

Mādhavacandra's present method for the quadrature of a circular annulus is, no doubt, excessively lengthy. It can be easily made short at the following two points -

(a) The quadratic quantities should be replaced by simple ones.

(b) There is no need to transform an isosceles trapezium into a rectangle.

Moreover, the formula for finding the area A of an isosceles trapezium,

$$A = 1/2\,(m + b)u$$

was known to *Nemicandra* and to *Mādhavacandra* as well (cf. TLS v.114, p. 110), where m, b and u are its face *(mukha)*, base *(bhūmi)* and altitude *(udaya)*.[4]

Here m = 1l $\sqrt{10}$, b = 5l $\sqrt{10}$ and u = 2l.

Hence,

$$A = 1/2\,(1l\sqrt{10} + 5l\sqrt{10}).2l$$

$$= 6\sqrt{10}\,l.l. \text{ square } yojanas.$$

The possible reason behind why *Mādhavacandra* has transformed the isosceles trapezium into a rectangle is that a rectangle is some more down

to earth figure than an isosceles trapezium.

Before coming at the end, it may be interestingly noted that the formula,

$$A = \sqrt{10}\ (S_o + S_i)\frac{r}{2}$$

for finding the area of a circular annulus was very well known to *Nemicandra* (cf. TLS, v. 315, p. 262), where S_o and S_i are its outer *(anta)* and inner *(ādi)* diameters *(sūcī vyāsas)* and r is its breadth *(rundra)*.[5]

As far as known to the present author, the present method for the quadrature of a circular annulus does not occur elsewhere and hence may be unique.

We conclude this paper by putting a remark that every teacher of secondary school mathematics should know the above method and apply it as a tool to frame the concept of the area of a circular annulus through paper folding while teaching. After all, it provides broad base for understanding the areas of a circular annulus and an isosceles trapezium.

ACKNOWLEDGEMENTS

The author expresses his sincere gratitude to Dr. Anupam Jain, Assistant Professor, Govt. Holkar Science (Autonomous) college, Indore for going through the manuscript and indebted to *Kundakunda Jñānapīṭha*, Indore for giving the facilities in the preparation of the paper.

REFERENCES AND NOTES

1. *Trilokasāra*, ed. with *Mādhavacandra Traividya's* Sanskrit commentary and with *Āryikā Viśuddhamati's* Hindi commentary by R.C. Jain Mukhtara and C.P. Patni, Shree Mahaviraji (Raj.) VNY 2501 (=1975 A.D.)
   TLS, ed. with *Mādhavacandra Traividya's* Sanskrit commentary by Pt. Manohajlalji, *Sri Manikchandra Digambar Jaina Granthamala Samiti*, Mumbai, 1918.
   The references are given throughout the paper from *Viśuddhamati's* text, if otherwise is not stated.
2. He was a Jaina sage. His disciple named *Camuṇḍarāya* erected the world's famous colossal image of *Bāhubali* at *Śravaṇabelgola* in Karnataka. He was present in the first consecration ceremony of the image, held on 13th March of 981 A.D.
3. TLS, Manoharlalji, p.405
4. For details, see :
   Jadhav, Dipak. *Nemicandra's* Rule for An Isosceles Trapezoidal Figure, To be published in Dr. Hiralal Jain Memorial Volume.
5. For details, see :
   Jadhav, Dipak and Anupam Jain (Unpublished) The Mensuration of the Circle of *Nemicandra* (c.981 A.D.).

Received after revision : September 2000

वर्ष - 12, अंक - 4, अक्टूबर 2000, 67 - 74

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैनागम, आधुनिक विज्ञान एवं हमारे दैनन्दिन जीवन में ध्यान

■ पारसमल अग्रवाल *

विशेष स्तम्भ - आगम का प्रकाश : जीवन का विकास

अर्हत् वचन की लोकप्रियता एवं समसामयिक उपयोगिता में अभिवृद्धि एवं इसके पाठकों को जिनागम के गूढ़ रहस्यों से सहज परिचित कराने हेतु हम एक स्तम्भ **'आगम का प्रकाश - जीवन का विकास'** प्रारम्भ कर रहे हैं।

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम ऐसे लघु शोध आलेख या टिप्पणी प्रकाशित करेंगे जिनमें निम्नांकित विशेषताएँ हों -

1. जैनागम का कोई मूल उद्धरण अवश्य हो।
2. हमारे जीवन में सीधा उपयोगी हो। अर्हत् वचन के पाठक इस स्थल पर अपने जीवन के विकास / सुख / शांति के लिये कुछ प्राप्त करने के उद्देश्य से इस अंक की उत्सुकता से प्रतीक्षा करें व उन्हें अवश्य इससे कुछ शांति मिले।
3. जैन दर्शन के कोई कम प्रचारित या दबे हुए पक्ष की जीवन में महत्ता उद्घाटित होती हो।
4. नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण हो।

उपर्युक्त 4 बिन्दुओं में प्रथम दो आवश्यक हैं व शेष 2 आवश्यक तो नहीं किन्तु हो जाये तो अच्छा है। वर्ष - 12, अंक - 3, जुलाई 2000 में हम जैनागम में प्राणायाम एवं ध्यान - पारसमल अग्रवाल लेख प्रकाशित कर चुके हैं।

— सम्पादक

प्रस्तावना

मैडिटेशन या ध्यान द्वारा स्वास्थ्य - सुधार एवं स्वास्थ्य - रक्षा कुछ वर्षों में पश्चिम जगत में भारतीय व्यक्तियों के माध्यम से प्रारम्भ होकर प्रचलित हो रही है। इस विषय में कई प्रश्न पैदा होते हैं - ध्यान कैसे किया जाये? ध्यान क्या वास्तव में लाभदायक है? जैनाचार्यों का ध्यान के बारे में क्या मत है? एवं इसका आध्यात्मिक पक्ष क्या है? इस लेख में इन बिन्दुओं पर संक्षिप्त चर्चा प्रारंभ करने के पूर्व यह जानना उचित होगा कि जैनाचार्यों का प्रमुख उद्देश्य आत्मिक लाभ रहा है व आधुनिक पाश्चात्य जगत का उद्देश्य स्वास्थ्य लाभ है। आत्मिक लाभ के साथ जो पुण्य बंध एवं पापों का क्षय होता है उसमें स्वास्थ्य लाभ हो जाना जैनाचार्यों ने भी वर्णित किया है (किन्तु उनके लिए यह गौण बात थी)।

इस लेख के प्रथम भाग में ध्यान का जैन शास्त्रों के अनुसार वर्णन करने के उपरान्त भाग 2 में यह बतायेंगे कि इस शास्त्रीय वर्णन के अनुसार एक सामान्य व्यक्ति के लिए सरल शब्दों में ध्यान का विवरण क्या है। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा वर्णित ध्यान की विधि का विवरण भी इस भाग में किया है। भाग 3 में हम यह बतायेंगे कि आधुनिक वैज्ञानिक ध्यान के विषय में क्या कहते हैं।

* Chemical Physics Group, Department of Chemistry, Okalahoma State University, STILLWATER OK 74078 U.S.A.

भाग 1 : जैनागम एवं ध्यान

तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वामी ने 4 प्रकार के ध्यान [1,2] बताए हैं -

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ तत्त्वार्थ सूत्र 9.28 ॥

भावार्थ : ध्यान 4 प्रकार के होते है -
(1) आर्त्त ध्यान (2) रौद्र ध्यान (3) धर्म ध्यान (4) शुक्ल ध्यान।

इन चारों में से शुक्ल ध्यान[3] तो श्रुत केवली एवं केवली के ही होता है। धर्म ध्यान प्रमुखतया मुनिराज[4] के होता है व सम्यग्दृष्टि गृहस्थ[5] के भी संभव है। आर्त्तध्यान व रौद्र ध्यान तो गृहस्थ अवस्था में सामान्यतया चलता ही रहता है।[6]

इच्छित वस्तु या व्यक्ति का वियोग होने से, अप्रिय वस्तु या अप्रिय व्यक्ति के मिलने से, रोग या कष्ट आने से व चाह की ज्वाला में जलने सम्बन्धी जो चिन्तवन होता है वह आर्त्त ध्यान कहलाता है।[7]

हिंसा में लाभ, झूठ में लाभ, चोरी में लाभ व भोग सामग्री की रक्षा करने में लाभ के चिन्तवन को रौद्र ध्यान कहा जाता है।[8]

सामायिक पाठ में कहा है कि '**आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छाड़ि करहूं सामयिक**'। सामायिक धर्म ध्यान का एक रूप है।[9] । आर्त्त, रौद्र ध्यान से पाप का बंध होता है। इनको छोड़कर धर्म ध्यान करने से पाप का पुण्य में संक्रमण व पापों का क्षय होता है।

आत्मा, परमात्मा, कर्म व्यवस्था, सात तत्त्व, छः द्रव्य आदि का वीतराग भाव की प्रधानतापूर्वक व आर्त्त रौद्र ध्यान के अभाव सहित चिन्तवन धर्म ध्यान के अन्तर्गत आते हैं। भाग 3 के प्रकरण को ध्यान में रखते हुए धर्म ध्यान के एक भेद संस्थान विचय धर्मध्यान के एक प्रभेद **पदस्थ ध्यान**[10] का विवेचन यहां करना उचित होगा। इस संदर्भ में पिण्डस्थ[11], कपस्थ[12], रूपातीत[13], आज्ञाविचय[14], अपायविचय[15], विपाक विचय[16], संस्थान विचय[17] आदि का विवरण जानना भी उपयोगी होगा जिन्हें अन्यत्र देखा जा सकता है।

पदस्थ धर्म ध्यान के अन्तर्गत आर्त्त ध्यान एवं रौद्र ध्यान छोड़कर ॐ, या णमोकार मंत्र, या किसी पवित्र मंत्र या अकारादि स्वर, या ककारादि व्यंजन के अवलंबन पूर्वक ध्यान होता है। आचार्य शुभचन्द्र के निम्नांकित दो श्लोकों द्वारा पदस्थ ध्यान का आशय अधिक स्पष्ट हो सकता है -

पदान्यालम्ब्य पुण्यानि योगिभिर्यद्विधीयते।
तत्पदस्थं मतं ध्यानं विचित्रनय-पारगैः॥ ज्ञानार्णव - 38.1॥

अर्थ : जिसको योगीश्वर पवित्र मन्त्रों के अक्षर स्वरूप पदों का अवलम्बन करके चिन्तवन करते हैं, उसको अनेक नयों के पार पहुंचने वाले योगीश्वरों ने पदस्थ ध्यान कहा है।

द्विगुणाष्टदलाम्भोजे नाभिमण्डलवर्तिनि।
भ्रमन्तीं चिन्तयेद्ध्यानी प्रतिपत्रं स्वरावलीम्॥ ज्ञानार्णव - 38.3॥

अर्थ : ध्यान करने वाला पुरुष नाभिमंडल पर स्थित सोलह दल (पंखड़ी) के कमल में प्रत्येक दल पर क्रम से फिरती हुई स्वरावली का (अर्थात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अ:) चिन्तवन करे।

इसी सर्ग में आचार्य शुभचन्द्र ने ॐ, णमोकार मंत्र सहित कई मंत्रों की चर्चा

करते हुए साधक को मंत्र चुनने के विकल्प दिए हैं।

सामान्य बुद्धि से यहां एक प्रश्न आ सकता है कि किसी अक्षर 'अ' या 'आ' के ध्यान का क्या लाभ? इसका एक उत्तर शायद यह भी हो सकता है कि मन को जिस तरह भी आर्त्त-रौद्र ध्यान से हटाकर स्थिर किया जा सकता है उस तरह स्थिर करना अपने आप में एक ध्यान है। मन की स्थिरता न केवल आत्मदर्शन हेतु आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है किन्तु आज कई प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि यह मन की स्थिरता कई रोगों की औषधि भी है। आध्यात्मिक भाषा में यह कहा जा सकता है कि मन की स्थिरता से राग-द्वेष मन्द होते हैं व पापकर्मों का पुण्य में संक्रमण होता है जिसमें आत्मविकास के अतिरिक्त रोगों का क्षय भी हो सकता है। ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र कहते हैं -

अवर्णस्य सहस्रार्द्धं जपन्नानन्दसंभृतः।
प्राप्नोत्येकोपवासस्य निर्जरां निर्जिताशयः॥ 38.53 ॥

अर्थ : जो अपने चित्त को वश में करके आनन्द से 'अ' इस वर्ण मात्र का पांच सौ बार जप करता है, वह एक उपवास निर्जरारूप फल को प्राप्त होता है।

इसी ग्रन्थ में 41 वें सर्ग में आचार्य शुभचन्द्र ने यह वर्णित किया है कि धर्म ध्यान के प्रभाव से भौतिक सुख सामग्री, निरोग शरीर, अहमिन्द्र, सुरेन्द्र व परंपरा से मोक्ष प्राप्ति होती है।[18]

भाग 2 : सामान्यजन ध्यान का लाभ कैसे लें?

जैनागम के अनुसार धर्म ध्यान तो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि के ही संभव है। प्रश्न यह उठता है कि जैसे सूर्य का उदय होने के पहले ही ऊषाकाल में प्रकाश होने लगता है या रात्रि में भी एक दीपक से अंधकार में थोड़ी कमी हो जाती है उसी प्रकार एक सामान्य व्यक्ति जिसके सम्यक्त्व की किरण अभी प्रकट नहीं हुई है वह इस ध्यान की चर्चा का लाभ मिथ्यात्व की रात्रि में भी किस प्रकार ले सकता है इच्छाओं एवं वासनाओं की चंचलता को रोककर किसी एक शब्द या मंत्र पर ध्यान केन्द्रित करने से लाभ संभव है ऐसा पश्चिम जगत में कई प्रयोगों से प्रमाणित हुआ है। प्रिंसटन विश्वविद्यालय, अमरीका की पैट्रिशिया कैरिंगटन[19] ने यह बताया कि ध्यान के भौतिक लाभ तो थोड़ा ध्यान करने से भी होते हैं ; किन्तु प्रतिदिन एक घंटे से अधिक ध्यान करने पर व्यक्ति आध्यात्मिक होने लगता है। पश्चिम में ध्यान का भौतिक लाभ आज लाखों व्यक्ति ले रहे हैं। हजारों लेख व दर्जनों पुस्तकें ध्यान के बारे में पश्चिम में उपलब्ध हो रही हैं। जीवनोपयोगी जो भी पत्रिकाएँ अमेरिका में प्रकाशित होती हैं उनके लगभग प्रत्येक अंक में ध्यान की शिक्षा किसी-न-किसी रूप में होती है। कई अनुभवी आधुनिक एवं पुरातन विद्वान् ध्यान के बारे में विभिन्न विधियाँ बताते हैं। जैसे वस्त्र कई प्रकार के होते हुए भी यह विशेषता रखते हैं कि वे शरीर को ढकते हैं व सर्दी-गर्मी से रक्षा करते हैं, उसी प्रकार ध्यान की विधियों की भी मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित होती हैं -

1. आर्त्तध्यान में कमी यानी अपनी परेशानियों, समस्याओं व अपनी इच्छाओं के चिन्तवन में कमी।
2. रौद्रध्यान में कमी यानी पाप कार्यों की सफलता के चिन्तवन में कमी व भौतिक उपलब्धियों के नशे में कमी।

3. मन को परमात्मा के रूप या किसी दृश्य या किसी शब्द (मंत्र) या शब्द-समूह या स्वयं की श्वाँस पर लगाकर केन्द्रित करना।

4. ध्यान करते हुए मन भटक जाये तो स्वयं को नहीं धिक्कारना या खेद नहीं करना किन्तु जब भी लगे कि मन भटक गया है तब वापस अपने चुने हुए मंत्र पर मन को ले आना।

5. उचित शान्त वातावरण व आसन (रीढ़ की हड्डी टेढ़ी न हो, पेट ज्यादा भारी न हो)। सोने के ठीक पहले लम्बा ध्यान न हो अन्यथा ताजगी आने से निद्रा देरी से आयेगी।

आधुनिक डाक्टर भी प्रतिदिन ध्यान करने का सुझाव देते हैं। यह बात इस आधार पर भी कही जा सकती है कि अमेरिका के डाक्टरों की सर्वमान्य संस्था - अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा लिखित 832 पृष्ठों की पुस्तक - 'फैमिली मेडिकल गाइड'[20] के पृष्ठ 20 पर एक सामान्य व्यक्ति को प्रतिदिन ध्यान करने की सलाह दी है। ध्यान करने की विधि जो उस पुस्तक में प्रकाशित है उसका हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार है -

'ध्यान करने की कई विधियाँ हैं किन्तु सभी का एकमात्र लक्ष्य है दिमाग की घबराहट एवं चिन्ताजनक विचारों से शून्य करके शान्त अवस्था प्राप्त करना।'

'कई संस्थाएँ एवं समूह ध्यान करना सिखाते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि आप वहाँ जाकर ध्यान करना सीखें। अधिकांश व्यक्ति अपने आप ही ध्यान करना सीख सकते हैं। निम्नांकित सरल विधि को आप अपना सकते हैं -

1. एक शान्त कमरे में आराम से आँख बन्द कर कुर्सी पर ऐसे बैठो कि पाँव जमीन पर रहें व कमर सीधी रहे।

2. कोई शब्द या मुहावरा ऐसा चुनो जिससे आपको भावनात्मक प्रेम या घृणा न हो (जैसे OAK या BRING)। आप अपने होंठ हिलाये बिना मन ही मन इस शब्द का उच्चारण बार-बार दुहराओ। शब्द पर ही पूरा ध्यान दो, शब्द के अर्थ पर ध्यान नहीं देना है। इस प्रक्रिया को करते हुए यदि कोई विचार या दृश्य दिमाग में आये तो सक्रिय होकर उसे भगाने का प्रयास मत करो एवं उस दृश्य या विचार पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास मत करो; किन्तु बिना होंठ हिलाये आप मन ही मन जो शब्द बोल रहे हो उसकी ध्वनि पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करो।

3. इस प्रक्रिया को प्रतिदिन दो बार 5-5 मिनिट एक सप्ताह के लिये या जब तक कि दिमाग को अधिक समय के लिये विचार-शून्य करने के लिये प्रवीण न हो जाओ तब तक करो। तत्पश्चात् ध्यान की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाओ। शीघ्र ही देखेंगे कि आप 20-20 मिनिट के लिये ध्यान करने में समर्थ हो गये हैं।

   कुछ व्यक्तियों को शब्द के बदले किसी चित्र या मोमबत्ती आदि वस्तु का आश्रय लेना सरल लगता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के किसी भी शान्त ध्यान से दिमाग को विचारों एवं चिन्ताओं से रिक्त करना।'

भाग 1 में वर्णित ध्यान का विवेचन एवं उक्त अमेरिकन मेडिकल एशोसिएशन की विधि व पूर्ववर्णित ध्यान की विशेषताओं को समझने के बाद एक व्यक्ति ध्यान का शुभारम्भ अपने जीवन में कर सकता है। सावधानी यह रखना है कि प्रारम्भ में यह लगभग 5 मिनिट के लिये हो व धीरे-धीरे समय 20-30 मिनिट तक बढ़ाया जाये। मानसिक रोगियों को मार्गदर्शक की सहायता व प्रामाणिक व्यक्ति की अनुमति के बिना ध्यान नहीं करना

चाहिये। ध्यान करने हेतु कौनसा मंत्र या आसन या समय श्रेष्ठ है यह व्यक्ति स्वयं धीरे-धीरे अनुभव द्वारा सीख सकता है। आधुनिक विद्वानों का मत है कि व्यक्ति की रुचि एवं परिस्थिति के अनुसार मंत्र, आसन, समय आदि में बदलाव संभव है। अध्यात्म में भी कई मंत्रों की विविधता आचार्यों ने वर्णित की है।

मन्दिर में प्रात:काल खाली पेट व उचित आसनपूर्वक माला फेरने की परम्परा जैन संस्कृति में है। पूजा के समय बीच-बीच में 9 बार णमोकार मंत्र के जाप (लगभग 2 मिनिट) की परम्परा भी सुविदित है। ये पदस्थ ध्यान के ही रूप हैं जो अति लाभदायक हैं आज के नये प्रयोग यह बताते हैं कि ये रूढ़ि मात्र न होकर परम रसायन हैं।

प्रश्न : मन भटकता है। मुख्य समस्या यह है कि मन की भटकन को कैसे रोका जाये?

जैसे बड़े इन्टरव्यू या व्यापारिक निर्णय करते समय तत्काल बड़े लाभ की संभावना दिमाग में होने के कारण एक गृहस्थ उस समय उसकी अन्य समस्याएँ भूल जाता है, जैसे परीक्षा का पेपर देते समय एक विद्यार्थी इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे कल का पेपर याद नहीं आता है, उसी प्रकार ध्यान से भौतिक लाभ पर पक्का विश्वास करते हुए पश्चिम में कई व्यक्ति ध्यान के समय मन की भटकन को कम करने में समर्थ हो जाते हैं। आध्यात्मिक विधि हेतु धर्मध्यान के विवरण में जो धार्मिक तथ्य बताये हैं उनका बारम्बार चिंतवन करके पदस्थ ध्यान करने के पहले मन को इतना पक्का कर लेना होता है कि आत्मा तो जीवन की समस्याओं से परे है। समस्याएँ एवं उपलब्धियाँ क्षणिक हैं ; किन्तु आत्मा ध्रुव है, आत्मा तो सच्चिदानन्दघन है। इनको मात्र समझना पर्याप्त नहीं है। इन तथ्यों पर पूर्ण विश्वास ध्यान के पूर्व ताजा करना होता है तभी आर्त्त व रौद्रध्यान से मन हटेगा व मन की चंचलता कम होगी।

भाग 3 : ध्यान के भौतिक लाभ - आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में

सम्यग्दृष्टि के धर्म ध्यान से न केवल आध्यात्मिक लाभ होता है अपितु भौतिक लाभ भी होता है - ऐसा आचार्यों ने कई स्थलों पर वर्णित किया है।

सामान्य गृहस्थों द्वारा ध्यान करने से लाभ के भी पश्चिम जगत में कई प्रयोग हुए हैं। प्रिंसटन विश्वविद्यालय की एक वैज्ञानिक डॉ. पैट्रिशिया कैरिंगटन[21] ने ध्यान मग्न अवस्था में कई व्यक्तियों पर कई प्रयोग किए। ध्यान अवस्था में ऑक्सीजन की खपत में कमी मापी जा चुकी है व मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन भी यंत्र द्वारा देख सकते हैं। ध्यानावस्था में मस्तिष्क अल्फा अवस्था में आ जाता है। उपकरणों द्वारा ध्यान मग्न अवस्था एवं सामान्य विश्राम अवस्था में अंतर देखा जा सकता है। डॉ. कैरिंगटन के कई निष्कर्ष उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'फ्रीडम इन मेडिटेशन' में देखे जा सकते हैं। उन्होंने बताया कि ध्यान से ब्लडप्रेशर सामान्य NORMAL होने लगता है, कोलेस्टराल ठीक होता है, तनाव कम होता है, हृदय रोगों की संभावना कम होती है, याददाश्त बढ़ती है, डिप्रेशन के रोगी को भी लाभ होता है इत्यादि।

अमरीका के हारवर्ड मेडिकल स्कूल के वैज्ञानिक चिकित्सक डॉ. हर्बर्ट बेन्सन[22] के प्रयोग एवं उनकी पुस्तकें (1) The Relaxation Response (2) Timeless Healing भी ध्यान के सन्दर्भ में विश्वविख्यात हैं। सैकड़ों व्यक्तियों पर ध्यान के प्रयोगों द्वारा उन्होंने ध्यान व प्रार्थना पूजा के लाभ प्रमाणित किए हैं।

डॉ. आरनिश[23] (अमरीका) ने उनकी पुस्तक 'रिवर्सिंग हार्ट डिजीज' में ध्यान का

महत्व विस्तार से स्वीकार किया है। वे यह प्रचारित करते हैं कि हृदय रोग की बीमारी ठीक करने में ध्यान भी एक प्रभावी औषधि है।

अमरीका की प्रसिद्ध पत्रिका टाइम ने 20वीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ 100 Icons and Heroes में एक स्थान डॉ. दीपक चौपड़ा को दिया है। डॉ. दीपक चौपड़ा ने उनकी पुस्तक 'परफेक्ट हेल्थ'[24] में पृ. 127 से 130 पर ध्यान को औषधि के रूप में वर्णन करते हुए प्रायोगिक आँकड़ों का विश्लेषण किया एवं कई तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया। 40 वर्ष से अधिक उम्र के ध्यान करने वाले एवं ध्यान न करने वालों की तुलना करने पर यह पाया कि जो नियमित ध्यान करते हैं उन्हें अस्पताल जाने की औसत आवश्यकता लगभग एक चौथाई (26.3.%) रह जाती है। इसी पुस्तक में डॉ. चौपड़ा ने बताया कि ध्यान से ब्लडप्रेशर एवं कोलेस्टराल सामान्य होने लगता है। हृदय रोग के आंकडे बताते हुए डॉ. चौपड़ा लिखते हैं कि अमरीका में हृदयरोग के कारण अस्पतालों में प्रवेश की औसत आवश्यकता ध्यान न करने वालों की तुलना में ध्यान करने वालों को बहुत कम, मात्र आठवाँ भाग (12.7%) होती है। इसी प्रकार कैंसर के कारण अस्तपाल में भर्ती होने की आवश्यकता ध्यान न करने वालों की तुलना में लगभग आधी (44.6%) होती है। डॉ. चौपड़ा लिखते हैं कि आज तक ध्यान के मुकाबले में ऐसी कोई रासायनिक औषधि नहीं बनी है जिसमें हृदय रोग या कैंसर की इतनी अधिक रोकथाम हो जाये। 1980 से 1985 के एक ही चिकित्सा बीमा कम्पनी के सभी उम्रों के 7 लाख सदस्यों के आंकडों के विश्लेषण से यह भी ज्ञात हुआ कि ध्यान न करने वालों की तुलना में ध्यान करने वालों को डॉक्टरी परामर्श की औसत आवश्यकता आधी रही।

इस प्रकार के प्रयोगों एवं आकड़ों से प्रभावित होकर अमरीका के कई डॉक्टर कई बीमारियों के उपचार हेतु दवा के नुस्खे के साथ ध्यान का नुस्खा भी लिखने लगे हैं। ध्यान के नुस्खे के अन्तर्गत रोगी को ध्यान सिखाने वाले विशेषज्ञ के पास जाना होता है, जो ध्यान सिखाने की फीस लगभग 60 डालर प्रति घंटा लेता है। अमरीका की कई चिकित्सा बीमा कम्पनियाँ ध्यान पर होने वाले रोगी के इस खर्चे को दवा पर होने वाले खर्चे के रूप में मानती हैं व इसकी भरपाई करती हैं।

उपसंहार

अमरीका के डॉ. राबर्ट एन्थनी[25] ने इनकी पुस्तक 'टोटल सेल्फ कान्फिडेन्स' में ध्यान से तनाव व एलर्जी से मुक्ति, ड्रग एवं नशे की आदत से छुटकारा पाने में आसानी, एस्थेमा में राहत, ब्लडप्रेशर, कैंसर, कोलेस्टराल, हृदयरोग आदि में लाभ बताया है। इस तरह ध्यान के 24 भौतिक लाभ गिनाने के बाद यह बताया कि ये सब तो 'साइड इफेक्ट' यानी अनाज के उत्पादन के साथ घास के उत्पादन की तरह हैं, मूल लाभ तो यह है कि आप ध्यान द्वारा आन्तरिक शक्ति के नजदीक आते हो। दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति ने ध्यान को 'सावधान किन्तु प्रयासरहित (Alert and Effortless) अवस्था की उपलब्धि कहा है। 'महर्षि' महेशयोगी मन के विश्राम पाने को भावातीत ध्यान कहते हुए ध्यान को आध्यात्मिक एवं भौतिक उपलब्धि का स्रोत बताते हैं। प्रेक्षाध्यान भी प्रेक्षक या ज्ञाता - दृष्टा के रूप में सक्रियता एवं निर्विचारता के रूप में मन की अचंचलता / विश्रामावस्था बताता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से तो श्रेष्ठ लाभ तभी होता है ज़ब निकांक्षित अंग की प्रधानतापूर्वक साधक किसी लाभ की चाह न रखे व किसी हानि से नहीं डरे, वह श्रद्धान में अपनी

आत्मा को लाभ-हानि से परे माने। श्रेष्ठ धर्मध्यान वाली अवस्था तो वह है जहां **'पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां'** (जहां प्राणियों के पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं - वैसे ही जैसे कि सूर्य से अंधेरा क्षण भर में नष्ट होता है)। आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा वर्णित 'विकल्पजाल से रहित साक्षात् अमृत पीने वाली अवस्था' स्वरूप में गुप्त होने से प्राप्त होती है - यही ध्यान की परम अवस्था है।[26] ज्ञानी की इस अवस्था को बहुत ही सुन्दर एवं कम शब्दों में आचार्य अमृतचन्द्र यों भी कहते हैं कि यह विश्व के ऊपर तैरने वाली अवस्था है जिसमें न तो कर्म किया जा रहा है और न ही प्रमाद होता है -

विश्वस्योपरि ते तरंति सततं ज्ञानं भवंतः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यांति प्रमादस्य च।[27]

परिशिष्ट : जैनागम में वर्णित ध्यान के भेद - प्रभेद

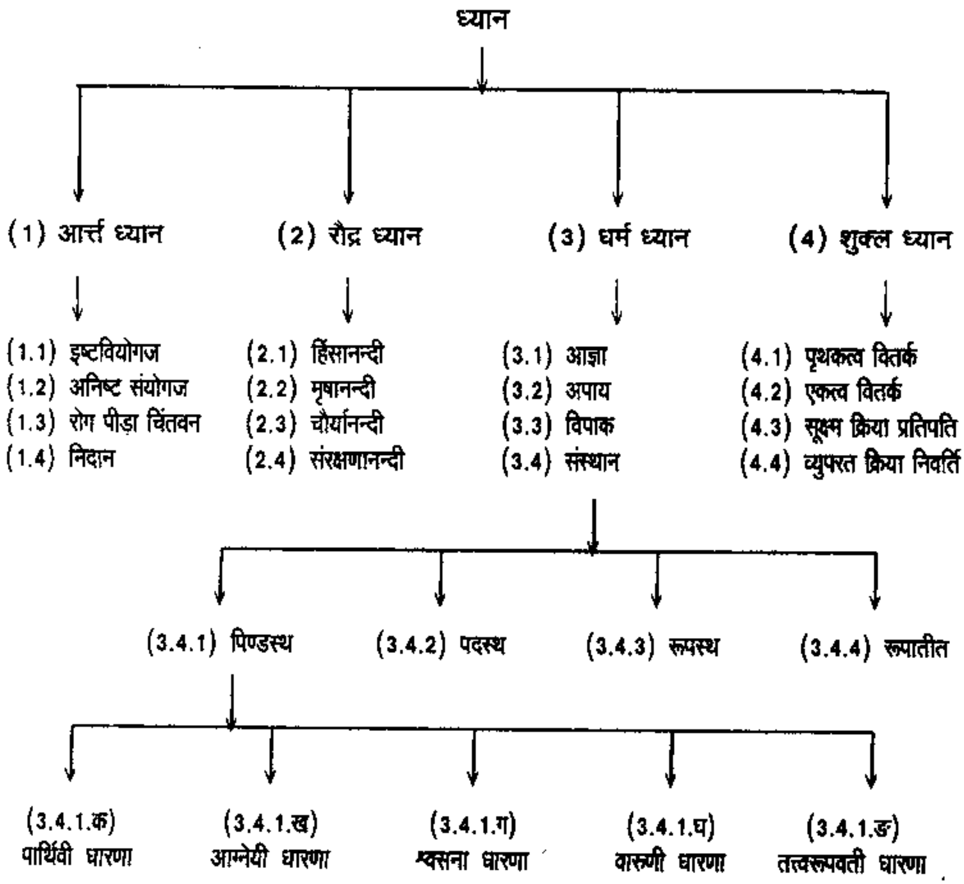

सन्दर्भ

1. आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय 9
2. आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, आगास, गुजरात, 1995, सर्ग 25 से 42.
3. (क) सन्दर्भ 1, सूत्र 9.37 - 9.44; (ख) सन्दर्भ 2, सर्ग 42.
4. सन्दर्भ 2, श्लोक 28.25
5. सन्दर्भ 2, श्लोक 28.28
6. सन्दर्भ 2, श्लोक 25.39 एवं 26.36
7. सन्दर्भ 2, श्लोक 25.27 - 25.29, 25.31 - 25.33, 25.35, 25.36
8. सन्दर्भ 2, श्लोक 26.3
9. पारसमल अग्रवाल, 'आधुनिक विज्ञान, ध्यान एवं सामायिक', श्रमण, जुलाई - सितम्बर 1996, पृ. 34 - 43
10. सन्दर्भ 2, सर्ग 38
11. सन्दर्भ 2, सर्ग 37
12. सन्दर्भ 2, सर्ग 39
13. सन्दर्भ 2, सर्ग 40
14. सन्दर्भ 2, सर्ग 33
15. सन्दर्भ 2, सर्ग 34
16. सन्दर्भ 2, सर्ग 35
17. सन्दर्भ 2, सर्ग 36
18. सन्दर्भ 2, श्लोक 41.12, 41.13, 41.15 - 41.17, 41.20, 41.25 - 41.27
19. Patricia Corrigton, 'Freedom in Meditation', Kendall Park, NJ : Pace Educational System, 1984
20. The American Medical Association : 'Family Medical Guide', Random House, New York, 1987
21. सन्दर्भ 19 की तरह
22. Herbert Benson and Marg Stark, 'Timeless Healing : The Power and Biology of Belief', (Fireside, Rockfeller Centre, 1230 Avenue of the Americas, New York, NY.10020, 1997)
23. Dean Ornish, 'Dr. Dean Ornish's Program for Reversing Heart Disease', (Ballantine Books, Random House, 1992)
24. Deepak Chopra, 'Perfect Health', (Harmony Books, N.Y., 1991)
25. Robert Anthony, 'Total Self Confidence : The Ultimate Secrets of Self Confidence', (Berkley Books, New York, 1984)
26. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश, क्र. 69
27. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश, क्र. 111

प्राप्त - 21.11.2000

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित श्रुत भंडार, खजुराहो

■ महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' *

*(प्रस्तुत आख्या यहाँ अविकल रूप से इस भावना से प्रकाशित है कि अन्य भण्डारों के प्रबन्धक इन बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में अपने भण्डार को पुनर्व्यवथित कर सकें। - **सम्पादक**)*

1978 में श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र प्रबंध समिति के पदाधिकारियों/ट्रस्टियों ने एक संकल्पना की कि क्यों न बुन्देलखण्ड में यत्र-तत्र बिखरी, असुरक्षित, अव्यवस्थित हस्तलिखित शास्त्र-सम्पदा को एकत्रित किया जाये। इस संकल्पना को साकार करने के लिये इसका केन्द्र खजुराहो चुना गया। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो के तत्कालीन अध्यक्ष श्री दशरथ जैन, छतरपुर एवं तत्कालीन मंत्री स्व. श्री कमलकुमार जैन, छतरपुर के नेतृत्व में एक टीम बनी तथा श्री नीरज जैन एवं श्री निर्मल जैन, सतना जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं व जैन मनीषियों का मार्गदर्शन और सहयोग प्राप्त कर शास्त्र संकलन का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

हस्तलिखित जैन शास्त्र-सम्पदा के एकत्रीकरण के महायज्ञ में प्रथमाहुति के रूप में इन समाजसेवकों ने अपने व्यक्तिगत शास्त्र संग्रहों को प्रदान किया। कई चरणों में अलग-अलग टीमें बनाकर बुन्देलखण्ड के लगभग 250 स्थानों का दौरा किया जिनमें निम्नलिखित स्थानों से इन्हें हस्तलिखित जैन शास्त्र प्राप्त हुए - महोवा, द्रौणगिरि. बक्सवाहा, सुनवाहा, सरई, जासौंडा, कवरई, दरगुवाँ, तिगोड़ा, हीरापुर, बँधा, पहाड़गाँव, परा, ईसानगर, तेंदूखेड़ा, देवरान, महाराजगंज, फुटवारी, भगवाँ, बीला, मवई, बमीठा, कुटौरा, मुँगवाई, गुनवारी, धनगवाँ, वमनौरा, दलीपुर, कुमी, किशुनगढ़, शाहगढ़, पहाड़ीखेरा, वृजपुर, गुनौर, अमानगंज, फुटवारी, गैसावाद, पीरा, हटा, निवाई, अथाई, गोरखपुरा, पाटन, मड़देवरा, बरमा, फरूखाबाद, मऊसहानिया, भोंयरा, कुपी, चन्द्रनगर, इटवा, बड़ामलहरा, दमोह आदि।

शास्त्र संकलन में पं. अजितकुमारजी-द्रौणगिरि, मा. चन्द्रभानजी जैन-घुवारा, श्री भागचन्द्र जैन-घुवारा, श्री सि. रूपचन्द प्रकाशचन्द जैन-हीरापुर, श्री कस्तूरचन्द फट्टा, श्री विजयकुमार जैन, श्री दीपचन्द जैन, पं. गोविन्ददास कोठिया-अहार, पं. भागचन्द जैन 'इन्दु' - गुलगंज आदि ने अपना अमूल्य समय देकर पूर्ण समर्पण भावना से सहयोग किया और भी अनेक व्यक्तियों के योगदान से लगभग 1400 ग्रंथों का एक अच्छा शास्त्र भण्डार हो गया। इसका नाम **आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित श्रुत भण्डार, खजुराहो** रखा गया।

आत्मज्ञ सत्पुरुष श्री शशीभाई जी की प्रेरणा से स्थापित श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में जैन साहित्य सूचीकरण का कार्य **डॉ. अनुपम जैन** ने बड़ी दक्षता एवं कुशलता से स्वयं के निर्देशन में प्रारम्भ करवाया। हस्तलिखित जैन साहित्य की सूचियाँ तैयार करवाने के क्रम में उन्होंने श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र, खजुराहो के वर्तमान मंत्री श्री निर्मल जैन, सतना से खजुराहो शास्त्र भण्डार की परिग्रहण पंजी की फोटोकापी भेजने का अनुरोध किया। श्री निर्मलजी ने सूचीकरण कार्य में उत्साहवर्द्धन करते हुए तुरन्त पंजी उपलब्ध करवा दी।

1 अगस्त 2000 को श्री हीरालाल जैन (अध्यक्ष-श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर), उनकी पत्नी, डॉ. अनुपम जैन (परियोजना निदेशक एवं मानद सचिव-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ) और मैं (डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'-शोधाधिकारी-सूचीकरण परियोजना) खजुराहो पहुँचे।

छतरपुर से डॉ. रमा जैन (सचिव - अ. भा. दि. जैन महिला संगठन) भी इस टीम में सम्मिलित हो गई थीं।

खजुराहो के श्रुत भण्डार का अवलोकन करने पर पाया कि वहाँ के शास्त्र सूची के अनुसार नम्बरों पर व्यवस्थित नहीं हैं। क्योंकि संभवत: अध्ययनार्थ लिये गये शास्त्र पुन: उसी नम्बर पर नहीं पहुँचे या एक वेस्टन से निकाले गये शास्त्र उसी वेस्टन में नहीं रखे गये या शास्त्रों को निकाल कर सुखाने के बाद पुन: यथावत् नहीं रखा जा सका होगा। यह सब देखकर निर्णय लिया गया कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के विशेषज्ञ पुन: 10 - 12 दिन के लिये खजुराहो जाकर शास्त्र भण्डार व्यवस्थित करेंगे तथा उनके साथ सहयोग के लिये खजुराहो प्रबन्ध समिति एक ऐसे व्यक्ति को भी बुला लेगी जिन्होंने पहले इस भण्डार का सूचीकरण किया हो या भण्डार की जानकारी रखते हों।

खजुराहो प्रबन्ध समिति के मंत्री श्री निर्मल जैन से डॉ. अनुपम जैन के सतत सम्पर्क के उपरान्त दिनांक 19.10.2000 से 28.10.2000 तक के लिये मैं (डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज') और श्रीमती आशा जैन खजुराहो के भण्डार का सर्वेक्षण और उसे व्यवस्थित करने गये एवं 20 से 26 अक्टूबर 2000 तक खजुराहो में रहकर दोनों ने कार्य सम्पन्न किया।

जो देखा/पाया

- इस ग्रंथ भण्डार की परिग्रहण पंजी (शास्त्र सूची) तीन थीं। प्रथम पंजी जिस विद्वान् ने भी तैयार की हो, उसमें बहुत मेहनत की गयी। शास्त्र संकलन के लगभग अन्तिम चरण में श्री पं. अजितकुमार जी जैन, द्रौणगिरि एवं पं. भागचन्द जैन 'इन्दु', गुलगंज फरुखाबाद से 223 पांडुलिपियाँ लाये थे। इनकी भी सूची एक अलग पंजी पर क्रमांक 1 से प्रारम्भ कर तैयार की गई।
- दिनांक 14.6.1996 से स्व. श्री पं. गोविन्ददास कोठिया, एम.ए., अहार एवं श्री पं. भागचन्द्र जैन 'इन्दु', गुलगंज ने यहाँ की पाण्डुलिपियों के पुन: सूचीकरण का कार्य प्रारम्भ किया। यह सूची पुरानी सूची से अलग एक तीसरी नयी पंजी पर क्रमांक 1 से प्रारम्भ की गई और यह पंजी भर जाने पर द्वितीय पंजी जिसमें 223 पांडुलिपियों के विवरण थे, उसमें आगे के विवरण दिये। इन्होंने नये नम्बर के साथ - साथ पुरानी पंजी का भी नम्बर दिया था। **पुरानी पंजी में जो सूची थी, उसमें से इन्हें 103 ग्रंथ नहीं मिले।** उन अनुपलब्ध नम्बरों के स्थान यथाक्रम इन्होंने अपने द्वारा बनाई पंजी में रिक्त छोड़े थे।
- स्व. पं. कोठियाजी एवं पं. इन्दुजी, इन दोनों विद्वनों ने नि:सन्देह बहुत मेहनत व त्याग किया है। क्योंकि प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के विवरण तैयार करना आसान नहीं है।
- हमने पाया कि ग्रन्थ यथा स्थान नहीं थे।
- वेस्टन पर नम्बर कुछ तथा उसमें ग्रंथ किसी अन्य नम्बर का था।
- जिस वेस्टन में 5 - 6 ग्रंथ सूचीकृत थे, उसमें एक ग्रंथ था।
- सूची में के 26 - 27 ग्रंथ एक साथ एक पोटली में और ऐसी 2 - 3 पोटलियाँ बनी थीं।
- एक बस्ते में दीमक से हटकर तिरुला की तरह और सफेद छोटी इल्ली की तरह दो प्रजातियों के कीड़े लगे मिले।

इससे प्रतीत होता है कि नियमित देखभाल नहीं हो पा रही होगी। जो ग्रंथ किन्हीं अध्येताओं, साधुओं ने अध्ययनार्थ लिये होंगे वे उसी स्थान और उसी वेस्टन में नहीं पहुँच पाये होंगे और शास्त्रों को सुखाये जाने के बाद वे यथास्थान और उसी वेस्टन में नहीं

रखे जा सके होंगे।

हमनें क्या किया

- हमने पूर्व की तीनों पंजियों को निरस्त करके नई सूची व्यवस्थित की है। इसका प्रथमत: आधार बनाया भण्डार का पुराना रजिस्टर।
- सभी ग्रंथों को अलमारियों से बाहर निकालकर प्रत्येक ग्रन्थ को चेक किया गया। प्रारम्भ या प्रशस्ति से उसका नाम मिलाया गया।
- पुराने रजिस्टर में 1051 प्रविष्टियाँ थीं। इससे आगे अन्य दो रजिस्टरों से विवरण मिलान करते हुए शास्त्रों और वेस्टनों पर अग्र संख्याएँ अंकित की गई।
- हम कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर से कैटलॉग कार्ड भी ले गये थे। जिन वेस्टनों में एक से अधिक ग्रंथ व्यवस्थित किये गये उनमें बाहर सेफ्टी पिन से कार्ड संलग्न कर दिया गया है। उसमें उस वेस्टन के शास्त्रों के नाम और नम्बर अंकित किये गये।
- वेस्टनों पर नम्बर अंकित करने के लिये स्लिपें लगाई व स्केच पेन से वेस्टन (कपड़े) पर भी नम्बर लिखे।
- व्यवस्थीकरण के दौरान कीड़े लगे शास्त्रों के बस्तों को ग्रंथ भण्डार के बाहर निकालकर साफ किया, चार दिन तक सुखाया, पुन: साफ किया और व्यवस्थित करके रखा।
- जो वेस्टन खराब हो रहे थे उन्हें बदला, जिन शास्त्रों के साथ कुछ आधार नहीं था उनमें कूट - गत्ता लगाकर सुरक्षित किया।
- **व्यवस्थित सूचीबद्ध कुल ग्रंथ संख्या 1374 हुई। श्री इन्दुजी एवं कोठियाजी को पुनर्सूचीकरण के समय पुरानी सूची के अनुसार जो 103 ग्रंथ नहीं मिले थे उनमें से हमें 36 ग्रंथ प्राप्त हुए। शेष 68 ग्रंथों सहित कुल 123 ग्रंथ हमें नहीं मिले जिनको कि पहले 2 - 3 स्तरों में विवरण तैयार कर सूचीबद्ध किया गया था।**
- शास्त्रों के लिये पहले 6 आल्मारियाँ थी, हमने एक अलमारी और खाली करवाकर 7 आलमारियों में शास्त्रों को व्यवस्थित किया।

अलमारी नं. 1 - **इसमें व्यवस्थित ग्रंथ - परिग्रहण संख्या 1 से 245 तक**
अनुपलब्ध ग्रंथ क्रमांक - 5, 6, 9, 69, 70, 73, 80 - 95, 122, 130, 140, 148, 149, 162, 188 - 191, 195, 203, 217, 233, 234, 239.

अलमारी नं. 2 - **इसमें व्यवस्थित ग्रंथ - परिग्रहण संख्या 246 से 500 तक**
अनुपलब्ध ग्रंथ क्रमांक - 264, 358, 359, 360,361, 446, 447, 456, 466

अलमारी नं. 3 - **इसमें व्यवस्थित ग्रंथ - परिग्रहण संख्या 501 से 800 तक**
अनुपलब्ध ग्रंथ क्रमांक - 505, 506, 530 - 532, 564, 579 - 586, 595, 614, 655, 567 - 680, 682 - 689, 691, 697, 741, 745, 747, 758, 776

अलमारी नं. 4 - **इसमें व्यवस्थित ग्रंथ - परिग्रहण संख्या 801 से 1000 तक**
अनुपलब्ध ग्रंथ क्रमांक - 814, 855, 953, 954 - 956, 973, 979

अलमारी नं. 5 - **इसमें व्यवस्थित ग्रंथ - परिग्रहण संख्या 1001 से 1280 तक**
अनुपलब्ध ग्रंथ क्रमांक - 1053, 1280

अलमारी नं. 6 - **इसमें व्यवस्थित ग्रंथ - परिग्रहण संख्या 1281 से 1374 तक**

अनुपलब्ध ग्रंथ क्रमांक - 1324 - 1328, 135, 1356, 1358

अलमारी नं. 7 - इसमें लगभग 250 ऐसे शास्त्र रखे गये हैं जिनके विवरण तैयार नहीं हैं। ये शास्त्र पहले पोटलियों में बंधे हुए आलमारियों के ऊपर 'रफ' लिखकर के रखे हुए थे। हमने नये वेस्टन मंगवाकर ग्रंथों को अलग - अलग करके, अधिकांश के साथ क्षेत्र द्वारा प्रकाशित कार्ड लगा दिये हैं। कुछ वस्तुतः रफ हैं, वे भी इसी में हैं। इनके विवरण तैयार करने का कार्य शेष है। इसमें अधिक समय लगेगा। द्वितीय चरण में इसे भी पूर्ण करेंगे।

- उपरोक्त विवरण के साथ सभी अलमारियों के बाहर हमने स्लिपें लगा दी हैं जिससे शोधकर्ताओं / अध्येताओं को कोई कठिनाई न हो।
- सभी अलमारियों में कुनैन की टिकिया डाल दीं तथा अलमारियों के ऊपर रखे फालतू कपड़े, लकड़ी, किताबें हटवा दिये हैं।

कतिपय सुझाव

- ★ अलमारी नं. 6 के नीचे के पाये अलमारी में धंसे हुए हैं अर्थात् वह क्षत है, बन्द नहीं होती है। इस कारण ग्रंथों को चूहे आदि क्षति पहुँचा सकते हैं। अतः उसकी मरम्मत करवा लेना चाहिये या बदल देना चाहिये। जब अलमारी बदली जाये तो उसके ग्रंथों को पुनः यथावत् अनुक्रम से रख दिया जाये।
- ★ ग्रंथ भण्डार वाले कक्ष में दो अन्य अलमारियाँ, एक सन्दूक में तथा कुछ बाहर क्षेत्र का अन्य सामान भी रखा है। हमारा सुझाव है कि इस कक्ष में हस्तलिखित शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सामान न हो; क्योंकि अन्य सामान के साथ - साथ ग्रंथों मे भी कीड़े लगने की सम्भावनाएँ होती हैं।
- ★ जब कोई भी अध्येता/शोधकर्ता/मुनिराज ग्रंथ मंगायें तो केवल भण्डार और अलमारियां खोलकर छोड देने की बजाये, एक जानकार व्यक्ति स्वयं ग्रंथ निकलवा दे, उसका नम्बर एक रजिस्टर पर नोट करे और वापस मिलने पर वह ग्रंथ पूर्ववत् उसी जगह रखवा दे।
- ★ यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि अमुक अधिकारी की स्वीकृति के बगैर ग्रंथ ग्रंथालय के बाहर नहीं जायेगा।
- ★ समय - समय पर भण्डार जरूर खोला जाये तथा दीमक आदि न लग जाये इसकी सावधानी बरती जानी चाहिये।
- ★ जो ग्रंथ सूचीबद्ध नहीं हो पाये हैं, उनकी सूची भी शीघ्र तैयार करवा ली जाना चाहिये।

खजुराहो के एक सप्ताह के प्रवास के दौरान वहाँ के व्यवस्थापकों एवं स्थानीय अधिकारियों ने हमारे आवास, भोजनादि का उत्तम प्रबन्ध किया तथा ग्रंथ भण्डार के लिये जो वेस्टन, कुनैन - टिकिया, पिन, गोंद आदि सामग्री की मांग की वह तुरन्त उपलब्ध कराई। मैनजर श्री जी. एल. जैन ने हमारे द्वारा संशोधित सूची पंजी तथा षट्पाहुड़ ग्रंथ की फोटोकापी भी हमें निःशुल्क प्रदान की। सभी पदाधिकारियों व व्यवस्थापकों के हम श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से आभारी हैं।

पुनर्व्यवस्थित सूची का श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रकाशन किया जा चुका है इसे कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कार्यालय से रु. 200 = 00 में प्राप्त किया जा सकता है।

कुछ महत्वपूर्ण और अप्रकाशित ग्रंथों का उल्लेख व परिचय अलग देंगे।

※ **शोधाधिकारी - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001**

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कार समर्पण समारोह

■ कृष्णा जैन * एवं रश्मि जैन **

सराकोद्धारक संत, परम पूज्य युवा उपाध्यायरत्न मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज के ससंघ मंगल सान्निध्य में श्री आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के मध्य अहिंसा स्थल, अलवर में श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कार समर्पण समारोह - 2000 दिनांक 28 नवम्बर 2000 को सम्पन्न हुआ। इसके अन्तर्गत संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री - इन्दौर, डॉ. जयकुमार जैन - मुजफ्फरनगर, डॉ. शेखरचन्द जैन - अहमदाबाद, डॉ. बसवराज कलुप्पा खडबडी - मिरज (महाराष्ट्र) एवं डॉ. (श्रीमती) रश्मि जैन - फिरोजाबाद को वर्ष 2000 के वार्षिक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। प्रत्येक पुरस्कार के अन्तर्गत रु. 31,000 = 00 नगद, शाल, श्रीफल, प्रशस्ति एवं स्मृति चिन्ह प्रदान किया गया। श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा अपनी सहयोगी संस्था प्राच्य श्रमण भारती के सहयोग से अभी तक 21 विद्वानों को इन पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। (विज्ञप्ति की प्रति पृ. 81 पर दृष्टव्य है)

वरिष्ठ समाजसेवी एवं दिग. जैन महासभा के उपाध्यक्ष श्री उम्मेदमलजी पांड्या, नई दिल्ली की अध्यक्षता में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष साहू श्री रमेशचन्दजी जैन के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न इस पुरस्कार समर्पण समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री वी. के. अजमेरा, I.A.S. (पटना), श्री योगेशकुमार जैन (अध्यक्ष - प्राच्य श्रमण भारती, खतौली), श्री नरेशकुमार सेठी (जयपुर), श्री स्वरूपचन्द जैन 'मार्सन्स' (आगरा), श्री बच्चूसिंहजी जैन (अलवर), श्री ताराचन्द प्रेमी (फिरोजपुर झिरका), श्री खिल्लीमल जैन एडवोकेट (अलवर) आदि अनेक विशिष्टजन उपस्थित थे।

उपाध्यायश्री के सान्निध्य में डॉ. रश्मि जैन, फिरोजाबाद को सम्मानित करते हुए साहूजी, पांड्याजी एवं डॉ. शास्त्री

ब्र. बहन अनीताजी एवं ब्र. बहन मंजुलाजी के मंगलाचरण से प्रारम्भ इस पुरस्कार समर्पण समारोह का संचालन पुरस्कार योजना के संयोजक तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सचिव डॉ. अनुपम जैन ने किया। संस्थान के अध्यक्ष डॉ. नलिन के. शास्त्री, समायोजक - महाविद्यालय विकास परिषद, मगध वि.वि., बोधगया के स्वागत भाषण के उपरान्त संस्थान के महामंत्री श्री हंसकुमार जैन ने संस्थान की अब तक की प्रगति एवं भावी योजनाओं पर प्रकाश डाला एवं आशा व्यक्त की कि यह संस्थान निकट भविष्य में एक उच्चस्तरीय शोध संस्थान का रूप ले सकेगा। इस अवसर पर श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के आर्थिक सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा तैयार की गई आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित श्रुत भंडार, खजुराहो की 1263 पांडुलिपियों की सूची का लोकार्पण डॉ. अनुपम जैन एवं डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' द्वारा आदरणीय साहूजी एवं पांड्याजी के करकमलों से कराया गया। सूची की एक प्रति पूज्य उपाध्यायश्री एवं दूसरी श्री निर्मल जैन, सतना

को समर्पित की गई। (विस्तृत समाचार पृ. 82 पर देखें) पुरस्कृत विद्वानों का परिचय देने वाली स्वसम्पादित पुस्तिका के विमोचन के साथ डॉ. अनुपम जैन ने पुरस्कार योजना का वर्ष 2000 की प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। उन्होंने पुरस्कार योजना के स्वरूप, आवश्यकता एवं उपादेयता पर प्रकाश डाला।

श्री निर्मल जैन - सतना, डॉ. अशोककुमार जैन - लाड़नूं, डॉ. बच्छराज दूगड़ - लाड़नूं, डॉ. शुभचन्द्र - मैसूर एवं डॉ. (श्रीमती) कृष्णा जैन - ग्वालियर द्वारा पुरस्कृत विद्वानों के परिचयोपरान्त आदरणीय साहूजी, श्री पांड्याजी, डॉ. शास्त्री, श्री योगेशजी, श्री हंसकुमारजी एवं दिगम्बर जैन समाज, अलवर के प्रतिनिधियों ने पुरस्कृत विद्वानों को सम्मानित किया। मंचासीन अन्य विद्वत् जनों का भी अलवर समाज द्वारा सम्मान किया गया। **सम्पूर्ण सम्मान समारोह की आयोजना में अलवर समाज के गौरव, परम मुनिभक्त श्री बच्चूसिंहजी का उल्लेखनीय योगदान रहा।**

पं. नाथूलाल जैन शास्त्री समारोह को सम्बोधित करते हुए

पुरस्कृत विद्वानों की ओर से बोलते हुए संहितासूरि पं. नाथूलालजी जैन शास्त्री ने कहा कि यह सम्मान किसी व्यक्ति या विद्वान् का सम्मान नहीं अपितु यह सरस्वती का सम्मान है। श्री निर्मल जैन - सतना ने कहा कि यह व्यक्ति का नहीं, व्यक्तित्व का सम्मान है। इन पुरस्कारों से प्रतिभाओं का उत्साहवर्द्धन एवं उनके कृतित्व का मूल्यांकन होता है। समाज का यह दायित्व है कि वह ऐसे दिव्य ललाम सुधीजनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने हेतु उनका अभिनन्दन करे। साहू रमेशचन्दजी जैन ने अपने वक्तव्य में इन पुरस्कारों पर हर्ष व्यक्त किया एवं विद्वानों को अधिक से अधिक पुरस्कृत एवं सम्मानित करने की प्रेरणा दी। श्री उम्मेदमल पांड्याजी ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में विद्वानों का अभिनन्दन करते हुए उन्हें श्रुत देवता के भंडार में निरन्तर वृद्धि करते रहने की बात कही एवं विद्वानों से यह अपेक्षा की कि माँ जिनवाणी के ये लाल निरन्तर ही जिनवाणी की सेवा करते रहें।

परमपूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने आशीर्वादात्मक मंगल उद्बोधन में कहा कि विद्वान् समाज एवं साहित्य रूपी मंदिर के स्वर्ण कलश हैं। जैसे कलश के बिना मंदिर की वैसे ही विद्वान् के बिना साहित्य, समाज की गरिमा में निखार नहीं आता है। अत: विद्वानों का सम्मान समाज का प्रमुख कर्तव्य है। आपने विद्वानों का आह्वाहन किया कि वे अपनी लेखनी से समाज में व्याप्त अनैतिकता, हिंसा एवं कुरीतियों पर प्रहार कर वात्सल्य, अहिंसा एवं नैतिकता की स्रोतस्विनी प्रवाहित करें, जिससे कि समाज में, राष्ट्र में, विश्व में शांति एवं भाईचारा स्थापित हो सके। कार्यक्रम का सशक्त संचालन एवं संयोजन कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सचिव डॉ. अनुपम जैन ने किया।

* सहायक प्राध्यापक - संस्कृत, शा. महारानी लक्ष्मीबाई कला एवं वाणिज्य स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर - 474 001 (म.प्र.)
** सहायक प्राध्यापक - हिन्दी, एस.आर.के. महाविद्यालय, फिरोजाबाद - 283 203 (उ.प्र.)

श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कार - 2000 की घोषणा

सराकोद्धारक संत, परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ ने जिनवाणी के प्रचार-प्रसार हेतु अपने-अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान करने वाले विशिष्ट विद्वानों को सम्मानित करने का निश्चय किया। इस श्रृंखला में 1999 तक निम्नलिखित 16 विद्वानों को सम्मानित किया जा चुका है -

1. डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, सागर (1991)
2. पं. श्रुतसागर जैन न्यायतीर्थ, सागर (1991)
3. प्रो. (डॉ.) उदयचन्द्र जैन, वाराणसी (1997)
4. पं. अमृतलाल जैन शास्त्री, वाराणसी (1997)
5. प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन, आरा (1997)
6. ब्र. पं. भुवनेन्द्रकुमार जैन, सागर (1997)
7. पं. जवाहरलाल जैन, भिण्डर (उदयपुर) (1998)
8. प्रो. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर (1998)
9. प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद (1998)
10. डॉ. फूलचन्द्र जैन प्रेमी, वाराणसी (1998)
11. पं. रतनलाल जैन शास्त्री, इन्दौर (1998)
12. डॉ. रतनचन्द्र जैन शास्त्री, भोपाल (1999)
13. पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी (1999)
14. श्री अजितप्रसाद जैन, लखनऊ (1999)
15. श्री रामजीत जैन एडवोकेट, ग्वालियर (1999)
16. डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन', श्रीमहावीरजी (1999)

वर्ष 1999 से श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ ने नियमित रूप से 5 वार्षिक पुरस्कार प्रदान करने का निश्चय किया है जिसके अन्तर्गत 1999 में प्रत्येक पुरस्कृत विद्वान को रु. 31,000/- की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति-पत्र से समारोहपूर्वक सम्मानित किया गया।

वर्ष 2000 के पुरस्कारों के लिये निम्नांकित 5 सदस्यीय निर्णायक मंडल का गठन किया गया -

1. **डॉ. नलिन के. शास्त्री**, अध्यक्ष - श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ, निवास - बोधगया
2. **श्री योगेशकुमार जैन**, अध्यक्ष - प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर, निवास - खतौली
3. **श्री हंसकुमार जैन**, मंत्री - श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ
4. **डॉ. शीतलचन्द जैन**, प्राचार्य - दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर
5. **डॉ. अनुपम जैन**, सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर (संयोजक - पुरस्कार योजना)

निर्णायक मंडल की अनुशंसा के आधार पर वर्ष 2000 हेतु निम्नवत् 5 पुरस्कारों की घोषणा की गई है -

1. **आचार्य शांतिसागर छाणी स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2000**
   जैन आगम साहित्य के परम्परिक अध्येता/टीकाकार विद्वान को आगमिक ज्ञान के संरक्षण हेतु
   पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, मोती महल, 40 हुकमचन्द मार्ग, इन्दौर - 452 001 (म.प्र.)
2. **आचार्य सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2000**
   प्रवचन निष्णात विद्वान को जिनवाणी की प्रभावना हेतु
   डॉ. जयकुमार जैन, 261/3, पटेल नगर, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर - 1 (उ.प्र.)
3. **आचार्य विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2000**
   जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु
   डॉ. शेखरचन्द्र जैन, सम्पादक - तीर्थंकर वाणी, अहमदाबाद
4. **आचार्य सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2000**
   जैन विद्याओं के पारम्परिक अध्ययन/अनुसंधान के क्षेत्र में समग्र योगदान हेतु
   डॉ. बी. के. खड़बड़ी, 'राजहंस', अनूप अपार्टमेन्ट, मंगलवार पेठ, मिरज - 416 410
5. **मुनि वर्द्धमानसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2000**
   जैन धर्म/दर्शन के किसी भी क्षेत्र में लिखी हुई मौलिक, शोधपूर्ण, अप्रकाशित कृति पर
   डॉ. (श्रीमती) रश्मि जैन, 52/12, लेबर कालोनी, फिरोजाबाद - 283 203 (उ.प्र.)

पुरस्कार समर्पण समारोह अहिंसा स्थल, अलवर में दिनांक 28.11.2000 को सम्पन्न हुआ।

सराक वार्षिक पुरस्कार - 2000 की घोषणा एवं समर्पण

परम पूज्य उपाध्यायरत्न श्री ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सराक ट्रस्ट ने सराक पुरस्कार की स्थापना की थी। इसके अन्तर्गत चयनित व्यक्ति या संस्था को रु. 25,000/- नगद, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति-पत्र से सम्मानित किया जाता है। वर्ष 1999 का पुरस्कार सराकोत्थान उपसमिति, गाजियाबाद को प्रदान किया गया था। वर्ष 2000 हेतु पाँच सदस्यीय निर्णायक मंडल का गठन किया गया था। निर्णायक मंडल की सर्वसम्मत अनुशंसा के आधार पर **श्री प्रेमचन्द जैन 'तेल वाले', मेरठ** को वर्ष 2000 का सराक पुरस्कार दिये जाने की घोषणा की गई। यह पुरस्कार 28 नवम्बर 2000 को अहिंसा स्थल, अलवर में उपाध्यायश्री के सान्निध्य में साहू रमेशचन्दजी जैन के मुख्य आतिथ्य तथा श्री उम्मेदमलजी पांड्या की अध्यक्षता में समर्पित किया गया। पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर श्री प्रेमचन्दजी जैन ने 1,00,000/- (एक लाख रुपये) की राशि सराकोत्थान हेतु समर्पित करने की घोषणा की।

डॉ. अनुपम जैन
संयोजक - पुरस्कार समिति

आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित श्रुत भंडार, खजुराहो की ग्रन्थ सूची का विमोचन

पूज्य श्री शशिभाई जी की प्रेरणा से स्थापित श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा संचालित जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना के अन्तर्गत आचार्य कुन्दकुन्द हस्तलिखित श्रुत भंडार, खजुराहो की ग्रन्थ सूची का विमोचन परमपूजय उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज के सान्निध्य में विशाल जन समुदाय के समक्ष श्री ऋषभदेव दि. जैन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, अलवर के भव्य पाण्डाल में दिनांक 28.11.2000 को सम्पन्न हुआ।

विमोचन साहू श्री रमेशचन्दजी जैन के करकमलों से जैन समाज के वरिष्ठ नेता श्री उम्मेदमलजी पांड्या की अध्यक्षता में डॉ. अनुपम जैन एवं डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' ने कराया। समारोह का संचालन एवं सूचीकरण के कार्य के महत्व का प्रतिपादन डॉ. अनुपम जैन ने किया। ग्रंथ सूची की विमोचित प्रति पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र कमेटी, खजुराहो के मंत्री श्री निर्मल जैन, सतना को भेंट की। इस अवसर पर ख्यातिलब्ध विद्वान् संहितासूरि पं. नाथूलालजी जैन शास्त्री - इन्दौर, डॉ. जयकुमार जैन - मुजफ्फरनगर, डॉ. शेखरचन्द जैन - अहमदाबाद, श्री ताराचन्द प्रेमी - फिरोजपुर झिरका, डॉ. अशोककुमार जैन - लाडनूँ, डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन - सहारनपुर, डॉ. शुभचन्द्र जैन - मैसूर, डॉ. (श्रीमती) रश्मि जैन - फिरोजाबाद, पं. निर्मल जैन - जयपुर, डॉ. सुषमा जैन - सहारनपुर आदि अनेक विद्वान् उपस्थित थे।

इस अवसर पर श्री निर्मल जैन, सतना ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के प्रति आभार व्यक्त किया। साहू श्री रमेशचन्दजी जैन ने इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि हम भंडार में उपलब्ध अद्यतन अप्रकाशित ग्रन्थों के शीघ्र प्रकाशन में सहयोग करेंगे। उपाध्यायश्री ने पांडुलिपियों के संरक्षण एवं सूचीकरण की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए इस कार्य में लगे लोगों का उत्साहवर्द्धन करते हुए अपना मंगल आशीर्वाद प्रदान किया।

■ **कु. संध्या जैन**
कार्यकारी परियोजनाधिकारी, सूचीकरण परियोजना
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584 महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

चतुर्थ राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी
उदयपुर, 9 - 12 नवम्बर 2000

■ सुरेखा मिश्रा *

धर्म, दर्शन, विज्ञान शोध संस्थान एवं सम्पूर्ण जैन समाज, आयड के संयुक्त तत्त्वावधान में वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव के आशीर्वाद से प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी सुखाड़िया रंगमंच, टाउनहॉल, उदयपुर में अत्यन्त गरिमामय वातावरण में सम्पन्न हुई। संगोष्ठी में देश भर से पधारे लगभग 50 प्रतिभागियों ने आचार्य कनकनंदीजी द्वारा रचित ग्रंथ **'सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान'** के परिप्रेक्ष्य में अपने शोध प्रस्तुत किये। संगोष्ठी का उद्देश्य शिक्षा, संस्कार, सदाचार के प्रचार-प्रसार, आचरण के माध्यम से व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व में सत्य, समता, सुख-शांति की स्थापना करना था।

संगोष्ठी के पूर्व उदयपुरवासियों को एक अद्भुत बौद्धिक, ओजस्वी एवं अपने-अपने क्षेत्र में निष्णात दो बेजोड़ व्यक्तित्वों का चिरप्रतीक्षित संगम देखने व सुनने को मिला जब आचार्यरत्न कनकनंदीजी गुरुदेव एवं विश्वविख्यात वैज्ञानिक, खगोलभोतिकविद् जयंत नार्लीकर ने अति महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा की। दोनों ही एक दूसरे से मुलाकात करने के लिये बेहद उत्सुक एवं उत्साहित दिखे। चर्चा के दौरान आचार्यश्री ने डॉ. नार्लीकर से ब्रह्माण्ड से जुड़े कई सवाल पूछे, जैसे समय तथा आकाश वक्र क्यों होते हैं? विग बैंग थ्योरी में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार मानी गई है? इसके फेल होने के क्या कारण हैं तथा विज्ञान इस विषय में क्या कहता है? ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार मानी गई है? सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार दो दोस्तों की आयु समान होने पर भी यदि एक दोस्त ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाकर लौटता है तो दूसरा दोस्त उससे उम्र में बड़ा क्यों हो जाता है? आदि। डॉ. नार्लीकर ने बड़ी ही विनय एवं सहजता से उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात रखी। इस दौरान आचार्य कनकनंदीजी ने अपने हृदय की वेदना रखते हुए कहा कि आज भारतवासियों के पास इतना अधिक ज्ञान होते हुए भी वे गरीब संतान सदृश हैं इसलिये मैं धर्म, दर्शन, विज्ञान और गणित आदि विषयों में समन्वय करना चाहता हूँ, अत: ज्ञान को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लिये आप जैसे वैज्ञानिकों का सहयोग चाहिये। डॉ. नार्लीकर ने परस्पर विचार विमर्श करते रहने का वादा किया। इस अवसर पर डॉ. नार्लीकर का सम्मान तथा आचार्य कनकनंदीजी का साहित्य भी प्रदान किया गया।

जिलाध्यक्ष महोदय को ज्ञापन प्रस्तुत करते हुए विद्वत्जन एवं कार्यकर्तागण

संगोष्ठी का शुभारम्भ श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन मंदिर धर्मशाला, आयड से मंगल शोभायात्रा के साथ हुआ जो कि टाउनहॉल प्रांगण में पहुँची। संगोष्ठी के दौरान सभी प्रतिभागियों ने जैन धर्म के संबंध में विभिन्न पाठ्यपुस्तकों में प्रकाशित गलत तथ्यों पर अपनी चिंता का इजहार किया तथा उसे हटाकर तथ्यपरक जानकारी जोड़ने की बात कही।

इसी बात को लेकर सम्पूर्ण जैन समाज, उदयपुर ने प्रतिभागियों के नेतृत्व में मानव संसाधन विकास मंत्री श्री मुरलीमनोहरजी जोशीके नाम प्रेषित ज्ञापन को एक विशाल जुलूस के रूप में जिला कलेक्टर परिसर पहुँचकर अति. कलेक्टर को सौंपा। संगोष्ठी में आचार्य श्री कनकनंदीजी, मुनि श्री विद्यानंदीजी, मुनि श्री आज्ञासागरजी, आर्यिका श्री रिद्धिश्रीजी द्वारा रचित ग्रंथों का भी विमोचन किया गया। साथ ही सम्मान समारोह, इंटरनेट पर www.jainkanaknandi.org का उद्घाटन तथा पिच्छि परिवर्तन कार्यक्रम भी सम्पन्न हुआ। संगोष्ठी के दौरान आचार्य कनकनंदी गुरुदेव के ओजस्वी तथा विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों का लाभ भी श्रोताओं को प्राप्त हुआ।

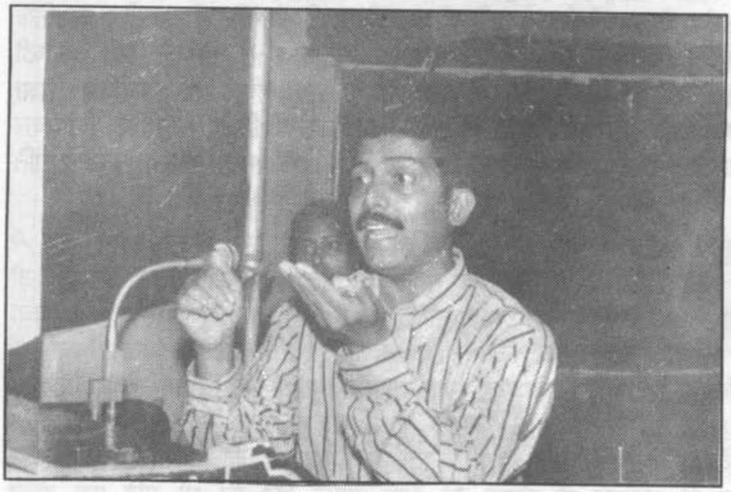

डॉ. संजीव सराफ अपना आलेख प्रस्तुत करते हुए

संगोष्ठी में देशभर से पधारे प्रतिभागियों द्वारा शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन के लिये सुझाये गये निम्नलिखित तेरह सुझावों को अमल में लाने हेतु विनम्र अपील देश भर के शिक्षा संस्थानों को भेजी गई -

1. बच्चों का शारीरिक, आर्थिक एवं मानसिक शोषण नहीं होना चाहिये। 2. पाठ्यपुस्तकों में नैतिक शिक्षा का समावेश होना चाहिये। 3. शिक्षक विद्यालयों में आदर्श आचरण प्रस्तुत करें। 4. बच्चों को गृह कार्य कम से कम दिया जाये ताकि पढ़ाई बोझिल न हो। 5. प्रायवेट स्कूलों में आडम्बरप्रियता तथा फैशन कम से कम हो। 6. शिक्षक घर के कार्य को विद्यालय में न करें। 7. मातृभाषा में बोलने वाले बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में दंडित न किया जाये। 8. शिक्षण शुल्क कम से कम हो। 9. पाठ्यपुस्तकों में अनावश्यक एवं अप्रयोजनभूत तथ्यों को सम्मिलित न किया जाये। 10. पाठ्यपुस्तकों में पुनरावृत्ति को रोका जाये। 11. प्रायोगिक शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिये। 12. ध्यान एवं योग शिक्षा का अनिवार्य अंग बने। 13. विद्यालयों में बच्चों को न्यूनतम 5 वर्ष की आयु के पहले प्रवेश ही न दिया जाये।

संगोष्ठी में प्रस्तुत शोधपत्रों का एक निर्णायक मंडल द्वारा मूल्यांकन किया गया एवं निम्नवत् पुरस्कार घोषित किये गये -

सर्वोत्तम पुरस्कार : आर्यिका ऋद्धिश्री माताजी, कु. सुरुचि जैन (कोटा), डॉ. संजीव सराफ (सागर)

प्रथम पुरस्कार : डॉ. मुकेश जैन (जबलपुर), डॉ. (श्रीमती) सुषमा जैन (सहारनपूर), डॉ. के. के. शर्मा, (बड़ौत)

द्वितीय पुरस्कार : डॉ. संजय जैन (जबलपुर), डॉ. शशि चित्तौड़ा (चित्तौड़), डॉ. शांतिलाल गोदावत

तृतीय पुरस्कार : प्रो. हनुमानसिंह वार्डिया, डॉ. निर्मला जैन, श्री पी. सी. जैन

सांत्वना पुरस्कार : श्री दीपक जैन, श्री अजित जैन 'जलज', श्री सत्येन्द्र जैन, श्री राजकुमार, प्रो. के. के. जैन, बीना

अनुशंसा : श्री विमल गोधा, डॉ. (श्रीमती) सरोज जैन

*** पुस्तकालयाध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,**
584 महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान ऋषभदेव का उद्‌घोष

■ ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन *

विश्व शांति शिखर सम्मेलन (न्यूयार्क) के समापन सत्र दिनांक 31.8.2000 को वाल्डोर्फ एस्टोरिया हॉटेल में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर के अध्यक्ष कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन द्वारा प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का उद्‌घोष करते हुए दिया गया भाषण।

मैं आज प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ कि सम्पूर्ण विश्व में शांति, मैत्री और सुभिक्षता स्थापित करने के लिये समस्त विश्व के धर्माचार्य संयुक्त राष्ट्र संघ के आमंत्रण पर यहाँ एकत्रित हुए हैं। युद्ध की विभीषिका में जलते हुए विश्व में शांति की शीतल जलधारा कैसे प्रवाहित हो, उसी के लिये यह प्रयास किया गया है।

मैं उस भारत भूमि से यहाँ आया हूँ जहाँ की हर श्वास में आध्यात्मिकता, त्याग, तपस्या एवं अहिंसा की सुगंध है। उस पावन धरा पर न जाने कितने ऋषियों - मुनियों ने जन्म लेकर सारे वातावरण को अपने त्याग से सुवासित किया है। करोड़ों - करोड़ों वर्ष पूर्व इसी भारत देश की अयोध्या नगरी में शाश्वत जैन धर्म के वर्तमान युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जन्म लिया। वही महापुरुष थे जो मानवीय संस्कृति के आद्य प्रवर्तक थे। सर्वप्रथम उन्होंने ही जीवनयापन की कला सिखाई - असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य एवं शिल्प का उपदेश दिया।

भगवान ऋषभदेव ने ही विश्व को सर्वप्रथम राज्य को संचालित करने की कला सिखायी, उन्होंने ही विवाह परम्परा का सूत्रपात किया, अपनी पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को क्रमशः अक्षर विद्या और अंक विद्या सिखाकर 'शिक्षा' का सूत्रपात किया। उन्होंने समस्त राजाओं को राजनीति की शिक्षा देते हुए कहा कि मात्र अपनी स्वतंत्रता को ही हम सर्वोपरि न मान लें, उसके साथ दूसरों के अस्तित्व का भी हमें ध्यान रखना चाहिये।

हम देख रहे हैं कि आज विश्व में शस्त्रों की होड़ मची हुई है, जगह - जगह युद्ध, अशांति, कलह और बैर का वातावरण छाया हुआ है। इस सम्मेलन में सभी धर्माचार्यों के विचारों से यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो गई है कि आज हमें दूसरों के प्राणों का हरण कर लेने वाले शस्त्रों की आवश्यकता नहीं, बल्कि सभी के प्राणों की रक्षा करने वाले महापुरुषों के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह जैसे सुन्दर शस्त्रों की आवश्यकता है। ये ऐसे शस्त्र हैं जिनको धारण करने से परस्पर एक दूसरे के प्रति कोमलता की, सहृदयता की एवं मैत्री की भावना विकसित होती है, अपने विकास के साथ - साथ दूसरे की उन्नति भी हमें अच्छी लगने लगती है, दूसरों के दुख हमें अपने प्रतीत होने लगते हैं। आज के विश्व को धर्मगुरुओं के वैचारिक उद्‌बोधन की आवश्यता है, सही विचारधारा को जन - जन में स्थापित करने की जरूरत है और यह कार्य धर्मगुरु ही कुशलतापूर्वक कर सकते हैं।

धर्मगुरुओं द्वारा बताई गई नई नीतियों में विकृति लाकर विश्व ने आज अपने लिये ही समस्याएँ उत्पन्न कर ली हैं। इसमें दोष हमारा अपना है। अहिंसा के सिद्धान्त में युद्ध की विभीषिका से शांति के साथ - साथ पर्यावरण का संरक्षण भी होता है जिसके लिये

आज अनेक देश की सरकारें प्रयासरत हैं। भगवान ऋषभदेव की धर्मनीति ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि सभी में जीव मानकर इन सभी के प्राणों की रक्षा का उपदेश करोड़ों वर्ष पूर्व दिया था। उनका अपरिग्रह का सिद्धान्त गरीबी दूर करने में आधारभूत है क्योंकि हर देश में कतिपय स्वार्थी हाथों में संग्रह वृत्ति होने के कारण ही बाकी सामान्य जनता को गरीबी की समस्या से जूझना पड़ता है।

मेरी गुरु एवं भारतीय जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने वर्तमान में संसार भर के लिये इन सिद्धान्तों की आवश्यकता को महसूस किया इसीलिये उन्होंने भगवान ऋषभदेव के नाम एवं उनके सर्वोदयी सिद्धान्तों को जन - जन में और संसार के कण - कण में पहुँचाने का महान लक्ष्य बनाया है। इसके लिये उन्होंने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कई कार्यक्रम आयोजित करने की प्रेरणा दी है। इस विश्व शांति शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिये उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है, उनकी यह मंगल प्रेरणा है कि विश्व की ज्वलंत समस्याओं का यदि कोई हल है तो वह है 'आपसी सौहार्द' तथा 'जिओ और जीने दो' का अमर सिद्धान्त। भगवान महावीर जो कि इस युग में जैनधर्म के अन्तिम एवं 24 वें तीर्थंकर हैं, उन्होंने भी 2600 वर्ष पूर्व इन्हीं सिद्धान्तों को विश्व के सम्मुख रखा था।

अंत में, मैं इस अनूठी परिकल्पना के संयोजन को मूर्त रूप देने वाले सम्मेलन के महासचिव श्री बाबा जैन को सम्पूर्ण भारतीय जैन समाज की ओर से हार्दिक बधाई देता हूँ, जिन्होंने इस जिम्मेदारी का सफलतापूर्वक निर्वहन करके दुनिया भर के धर्माचार्यों को एक मंच पर लाने का यह पुरुषार्थ किया है और उनके नाम के माध्यम से विश्व के कोने - कोने में शांति का सन्देश पहुँचाने का यह सराहनीय प्रयास किया है। एक उच्च कोटि के उद्देश्य की प्राप्ति में आधार बनकर बाबा जैन ने जैनसमाज के मस्तक को गौरवान्वित कर दिया है।

विश्व भर के समस्त धर्माचार्यों द्वारा चार दिनों तक जो बहुमूल्य विचार प्रस्तुत किये गये हैं, उनका सार जब हम अपनी - अपनी मातृभूमि पर अपने लोगों के बीच में क्रियान्वित करेंगे तभी इस शिखर सम्मेलन की सार्थकता सिद्ध हो पायेगी। सम्पूर्ण विश्व में शांति हो, सुभिक्षता हो, मैत्री हो, समन्वय हो, यही मेरी भगवान ऋषभदेव से प्रार्थना है।

* अध्यक्ष - दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान,
जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर (मेरठ) 250 404

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

JINAMANJARI

Editor - S.A. Bhuvanendra Kumar

Periodicity - Bi - annual (April & October)

Publisher - **Brahmi Society, Canada - U.S.A.**

Contact - Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar
4665, Moccasin Trail,
MISSISSAUGA, ONTARIO,
Canada l4z 2w5

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अहिंसा ही विश्व में शांति का उपाय

■ इन्दु जैन *

भगवान महावीर 2600 वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव महासमिति की राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष तथा टाइम्स आफ इण्डिया समाचार पत्र प्रकाशन समूह की चेयरमेन श्रीमती इन्दु जैन द्वारा न्यूयार्क, अमेरिका में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा आयोजित धर्म एवं अध्यात्म गुरुओं के सहस्राब्दी विश्व शांति सम्मेलन में दिया गया भाषण यहाँ प्रस्तुत है। ***सम्पादक***

भगवान महावीर गहन ध्यान की मुद्रा में तल्लीन थे। उनकी आंखें बन्द थीं। चारों ओर एक असामान्य शांति और पवित्रता का वातावरण व्याप्त था। एक नन्हीं सी चिड़िया उड़ती हुई वहाँ आई और फुदकती हुई भगवान के पास जा बैठी। जब भगवान ने आंखें खोली तो उस स्पन्दन से नन्हीं चिड़िया डर गयी और उड़ गई। महावीर ने सोचा कि मनुष्य की आँखे खोलने की प्रक्रिया में भी हिंसा छुपी हुई है। अहिंसा का अर्थ केवल यह नहीं कि हिंसा न हो बल्कि भय की भावना का भी समाप्त हो जाना और सम्पूर्ण मानवता को प्रेम में आबद्ध कर लेना है।

अहिंसा का अर्थ है जाति, रंग, वर्ण, धर्म, लिंग, बिरादरी, समुदाय, यहाँ तक कि प्राणी जगत की विभिन्न जातियों की भेद - सीमाओं को पार कर दूसरों तक पहुँचना। यह चेतना की एक स्वतंत्र अवस्था है। हमारी शारीरिक, भावनात्मक और बौद्धिक अवस्थाएँ हमें सीमा में बांध देती हैं, हमारे रास्ते अवरूद्ध कर देती हैं, हमें छोटा बना देती हैं। यही हमारे दु:खों का कारण है। इन बंधनों और सीमाओं की अनुपस्थिति ही अहिंसा है। और अहिंसा के लिये विश्व - अभियान छेड़ने की दिशा में पहला चरण अज्ञान को हटाना है। सच्चे ज्ञान में आत्म - बोध और आत्म - नियंत्रण निहित है। अहिंसा इस ज्ञान की चरम अवस्था है। क्योंकि यह दूसरों से अपने संबंधों का तादात्म्य करना सिखाती है। मोक्ष और निर्वाण की तरह अहिंसा भी परस्पर विरोधी सीमाहीन दुनियावी नाटकों सुख - दुख, आकर्षण - विकर्षण, प्रेम - घृणा, लाभ - हानि, सफलता - असफलता, अमीरी - गरीबी, भय - साहस, जय - पराजय, मान - अपमान, सम - विषम, गुण - दोष, अच्छा - बुरा, आजादी और बंधन से मुक्त है।

संक्षेप में अहिंसा अतीत से, इतिहास से, स्मृति से मुक्ति है। यह उन सब चीजों से मुक्ति है जो बाधित करती है, रोकती है, अवरूद्ध करती है, जिनसे स्वतंत्रता का हनन होता है। इसलिये वह कोई भी चीज या अवस्था, जिस पर उसके विपरीत का प्रभाव या असर पड़ सकता है, मुक्त नहीं है, वह स्वतंत्र नहीं है। और जो स्वतंत्र नहीं है, जो मुक्त नहीं है, जो निरपेक्ष नहीं है, वह अहिंसक नहीं हो सकता। मैं दूसरों की पीड़ा के प्रति तब तक संवेदनशील नहीं हो सकती, जब तक मैं इन परस्पर विरोधी मानवीय क्रियाओं और भावनाओं की बंदी हूँ। मैं दूसरे लोगों और उनकी तकलीफों के प्रति संवेदनशील कैसे हो सकती हूँ? जैन दर्शन का अनेकान्तवाद इसका उत्तर देता है। वह कहता है कि सत्य को निरपेक्ष ढंग से बताने या व्यक्त करने वाला कोई पूर्ण सिद्धान्त या सूत्र नहीं है। निर्वाण सम्यक्‌दर्शन में निहित है, सम्यक्‌ज्ञान में निहित है, सम्यक्‌चारित्र में निहित है। यानी आपका विश्वास वैसा हो, आपका कर्म वैसा हो, सरल रूप में इसकी व्याख्या यह हो सकती है कि मेरे करने का तरीका कोई अंतिम तरीका नहीं है। मेरा कहा हुआ पक्ष ही कोई एकमात्र पक्ष नहीं है। और मेरा सत्य ही अंतिम सत्य नहीं है। कई रास्ते

हैं, कई पक्ष हैं और सत्य तक पहुँचने के अनेकानेक मार्ग हैं। अपनी आस्था और अपनी दृष्टि की सीमाओं में सभी सही हैं।

लेकिन इस परम शांति और विश्वजनीन प्रेम की अवस्था कैसे प्राप्त की जाये? इच्छाएँ और उनकी तुष्टि, दूसरों के साथ मेरे सम्बन्धों का आधार नहीं बन सकती। जहाँ तक स्वयं का प्रश्न है, हमारी इच्छाएँ सिर्फ हमें बेचैन बनाती हैं। उन्हें पाने के लिये और जो पाया है उसे बचाये रखने के लिये हम चिंतित बने रहते हैं। अंततः हम एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं, जहाँ उसका सुख भी नहीं ले पाते, जिसकी पहले कामना की थी और जिसे उस कामना और प्रयत्न के बाद पाया था। जहाँ तक दूसरों से सम्बन्ध के सन्दर्भ में इन इच्छाओं और उनकी तुष्टि की भूमिका है, उन सम्बन्धों और मित्र परिजनों को हम अपनी इच्छाओं की तुष्टि का माध्यम बनाने लगते हैं। उन्हें हम अपनी लालसाओं की पूर्ति के लिये, एक वस्तु या उपकरण बना देते हैं। हम उनके निर्वाह की कोशिश इसलिये करते हैं ताकि अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये, जब आवश्यकता हो, मैं उनका इस्तेमाल कर सकूँ। इसीलिये जैनधर्म में अपरिग्रह का इतना ज्यादा महत्व है। यानि कुछ भी धारण नहीं करना, कुछ भी संचय नहीं करना, कुछ भी नहीं रखना। लेकिन यह अपरिग्रह एक मात्र लक्ष्य नहीं है। इसका प्राप्य है, इच्छाओं का विग्रह, क्षुद्र भावों पर नियंत्रण।

पश्चिम में अहिंसा की बात करना आजकल एक फैशन बन गया है। वे उसे एक शक्तिहीन हथियार मानते हैं। अहिंसा की यह गलत अवधारणा है। अहिंसा एक जीवनशैली है। यह एक आदर्श समाज के चिंतन की अभिव्यक्ति है। जो अहिंसा में विश्वास करता है, वह हिंसा का प्रतिरोध करते समय भी उस हिंसा से अप्रभावित रहता है। यह अहिंसा बार-बार होने वाली हिंसा को सोख लेती है। यह निरन्तर विस्तृत होने वाली, सबको प्रेम में लपेट लेने वाली, प्रत्येक सजीव या निर्जीव, वस्तु या प्राणी के प्रति अपने लगाव का अनवरत विस्तार है। क्रोध, वैमनस्य या प्रतिशोध की भावना इस अहिंसा का हिस्सा नहीं हो सकते।

प्रेम और अनुराग की यह भाषा आज के युवाओं से बेहतर कौन समझेगा? अगर अहिंसा को विश्व अभियान बनना है तो इस अभियान का नेतृत्व युवाओं को थामना होगा। पर्यावरण की रक्षा के लिये, शांति के उत्थान के लिये उन्होंने धर्म, साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता की क्षुद्र सीमाओं से बाहर निकलकर काम किया है, काम करने के जज्बे का परिचय दिया है। आज का प्रत्येक युवक एक विश्व नागरिक है। पुरुष हो या स्त्री, वह प्रेम की उस शाश्वत भाषा को समझता है। प्रेम, जो केवल अहिंसा से ही साध्य है। मैं विश्व के युवाओं को नमस्कार करती हूँ। मैं अहिंसा को नमन करती हूँ। मैं उस शाश्वत, विश्वजनीन, नैसर्गिक प्रेम में विश्वास करती हूँ और उसके निरन्तर विस्तार के लिये स्वयं को समर्पित करती हूँ।

* चेयरमेन - टाइम्स आफ इंडिया प्रकान समूह,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110 002

राष्ट्र की धड़कनों की अभिव्यक्ति

नवभारत टाइम्स

युग निर्माता भगवान ऋषभदेव

पुस्तक : युग निर्माता भगवान ऋषभदेव
लेखक : वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव
प्रकाशक : धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान
द्वितीय संस्करण : वर्ष 1999, पृष्ठ - 18 + 193, मूल्य - 41/-
समीक्षक : आ. ऋद्धिश्रीमाताजी, संघस्थ प्रज्ञायोगी आचार्य श्री गुप्तिनंदीजी महाराज

सृष्टि का शाश्वत् नियम है परिवर्तन। सभ्यता, संस्कृति, मानव समाज सभी को इस परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। जो मान्यतायें, परम्परायें कभी उपयोगी, समयानुकूल जान पड़तीं थीं, उनमें भी समय की गति को देखते हुऐ परिवर्तन करना पड़ता है। एक व्यवस्था, एक नियम, एक कानून प्रत्येक काल में, प्रत्येक समय में उपयोगी सिद्ध हो यह जरूरी नहीं है। समय काल के अनुसार उन परिस्थितियों में बदलाव, हेरफेर होता रहे तो परिवार में, समाज में, देश में, विश्व में सुव्यवस्था बनी रहती है। यदि परिस्थिति, परम्पराओं में समय के अनुसार बदलाव, हेरफेर नहीं होता है तो परिवार, समाज, राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति आदि व्यवस्थाओं में रूढिवादिता, तानाशाही, भोगलिप्सा, अनैतिकता की विकृतियाँ पनपने लगतीं हैं। इसीलिए समय की गति के साथ-साथ परिस्थिति, परम्पराओं में बदलाव होना आवश्यक है और इस बदलाव को कोई सामान्य पुरुष नहीं कर सकता इस बदलाव को करने के लिए विशिष्ट महापुरुषों का अवतरण इस बसुन्धरा पर होता है और उनकी प्रखर, ओजस्वी ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा एक नये युग का सूत्रपात, नयी सभ्यता संस्कृति को जन्म मिलता है।

इस नये युग का प्रारंभ युग के आदि में जन्में भगवान आदिनाथ के द्वारा हुआ। भोग प्रधान भोगभूमि के बाद जब कर्मभूमि का आगमन हुआ तब कर्म से अनभिज्ञ मानव समाज को कर्म प्रधान जीवन यापन करने के लिए असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्पकला का प्रशिक्षण देकर एक नये युग के निर्माण का सूत्रपात किया इसीलिए उपकृत संपूर्ण प्रजा उन्हें आदिब्रह्मा, आदि सृष्टि कर्त्ता, युग निर्माता, युगादि पुरुष, आदिनाथ आदि नामों से पुकारती थी।

इस कृति के लेखक आचार्य रत्न श्री कनकनंदी जी गुरुदेव ने इस कृति में सत्य तथ्य एवं प्रमाणिक सूत्रों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि इस युग के प्रथम निर्माता, आदि शिक्षक भगवान आदिनाथ ही थे। प्रस्तुत कृति में उन्हीं भगवान ऋषभदेव के जीवन एवं उनके द्वारा प्रतिपादित जीवन शैली का सरल, सुबोध एवं प्रवाहपूर्ण शैली में विस्तृत विवरण दिया गया है। कृति भारतीय संस्कृति के प्रत्येक जिज्ञासु के लिये पठनीय एवं संग्रहणीय है।

परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी
की प्रेरणा से मनाये जा रहे
भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष
में भगवान ऋषभदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रचार-प्रसार में, अपने ज्ञान का सदुपयोग करें।

वर्द्धमान पञ्चांग : उपयोगी प्रकाशन

पुस्तक : **वर्द्धमान पञ्चांग**

सम्पादक : **पं. महेशकुमार जैन शास्त्री, गणितकर्ता**

प्रकाशक : **संस्कृत ज्योतिष कम्प्यूटर एकेडमी, सर्वार्थसिद्धि, 3171-ई, सुदामा नगर, इन्दौर - 452 001 (म.प्र.)**

साईज : **28 x 21 से.मी., मूल्य : रु. 20/-, अंक - 3, पृष्ठ - 70 + 25, सन् 2000 - 2001**

समीक्षक : **डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज', शोधाधिकारी - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर**

जैन वाङ्मय में ज्योतिष विद्या बहुत समृद्ध है। जैन ज्योतिष और जैन परम्परा से अन्य ज्योतिषाचार्य भी भलीभांति परिचित थे। प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ 'मानसागरी' के कर्ता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में भगवान आदिनाथ का स्मरण करना आवश्यक समझा, जिसे जन्मपत्री के प्रारम्भ में लिखने का निर्देश दिया गया है -

श्रीआदिनाथ प्रमुखा जिनेशः श्रीपुण्डरीक प्रमुखा गणेशाः।
सूर्यादिखेटर्क्षयुताश्च भावाः शिवाय सन्तु प्रकट प्रभावाः॥ मा.सा. 2॥

जैनज्योतिष का समुचित उपयोग और व्यवहार नहीं हो पा रहा है। वर्द्धमान पञ्चांग जैन ज्योतिष में एक अग्र-कदम है। इस पंचांग में तिथि, वार और नक्षत्र उज्जैन के सूर्योदय के समय पर संगणित हैं। मुहूर्त-साधन और मुहूर्त चक्रों से यह पंचांग उपयोगी हो गया है। इसमें जैन व्रत, पर्वों, पंचकल्याणक तिथियों का समावेश यथा-तिथि किया गया है। मात्र वीर शासन जयन्ती की तिथि पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

चर सारणी, अक्षांस सारणी, वेतान्तर सारणी, लग्नसारणी, अवकहडा चक्रम् और जन्मपत्री बनाने की सरल विधि का समावेश इसमें किया गया है, जो ज्योतिष में थोड़ी सी भी दखल रखने वालों को पत्रिका निर्माण में बहुत उपयोगी है। प्रतिदिन के शुभ-अशुभ योग और आवश्यक मुहूर्त, चौघड़िया, वर्षफल आदि का भी समावेश किया गया है। यह महत्त्वपूर्ण और उपयोगी प्रयास है। अन्य पंचांगों की परम्परा से कुछ हटकर इसके अंतिम भाग में 'रत्न ज्योतिष' को सम्मिलित कर लिया गया है, इसमें किस ग्रह की उपशांति के लिये किस लग्न वाले को कौन सा रत्न, किस धातु में, किस अंगुली में धारण करना चाहिये, रत्न की मात्रा, सहायक रत्न, विरोधी रत्न और धारण करने की विधि निर्दिष्ट है।

इसके पृष्ठ 31 पर सूचना प्रकाशित है कि 'आगामी सन् 2002 से 2011 तक का वर्द्धमान पञ्चांग का गणित पूर्ण हो चुका है और विक्रम सम्वत् 2101 से 2200 तक के पञ्चांग निर्माण की तैयारी भी पूर्ण हो चुकी है।

जैन ज्योतिष पर साफ्टवेयर

संस्कृत-ज्योतिष-कम्प्यूटर एकेडमी के एक और अभिनव प्रयास के रूप में जैन ज्योतिष, ब्रह्म सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्त, मकरन्द, ग्रहलाघव और केतकी आधारित अर्थात् प्रसिद्ध पाँच सिद्धान्तों में से किसी भी एक सिद्धान्त या सभी सिद्धान्तों के तथा जैन सिद्धान्त का पञ्चांग बनाने के लिये शीघ्र ही आगामी महावीर जयन्ती तक एक साफ्टवेयर प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रोग्रामिंग का कार्य पूर्ण हो चुका है, मात्र इसका संशोधन चल रहा है। यह साफ्टवेयर विक्रयार्थ उपलब्ध रहेगा।

■ **पं. महेशकुमार जैन**
सम्पादक - वर्द्धमान पंचांग, **डीमापुर - 797 112**
फोन ; 03862 - 30232

जैन तीर्थक्षेत्रों के प्रबन्धकों से प्रार्थना

विभिन्न साहित्यकारों एवं इतिहासकारों ने पाठ्य पुस्तकों में जैन धर्म का प्रवर्तक भगवान महावीर को बताया है तथा कई पाठ्य पुस्तकों में जैन धर्म के 23 तीर्थंकरों के अस्तित्व को नकार दिया है एवं इसे मिथक-कथा जैन धर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए गढ़ना बताया है। ऐसी करीब 30 पाठ्य पुस्तकें हैं, जिनमें जैन धर्म के बारे में भ्रामक तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। जिसका संकलन डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) ने एक लघु पुस्तिका में किया है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'प्राचीन भारत' के संदर्भ में मैंने कुछ दिनों पूर्व अपना निवेदन जैन धर्म के अध्येताओं के नाम प्रकाशित किया था, जिसके प्रत्युत्तर में मुझे भारत के कोने-कोने से पत्र व सामग्री प्राप्त हुई है। उन सब विद्वानों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ। अलवर के एक स्वतंत्रता सेनानी श्री महावीर प्रसाद जैन ने तो इस संबंध में एक लघु-पुस्तिका भी प्रकाशित की है। जिसका प्राप्ति स्थान निम्न है -

श्री दि. जैन साहित्य प्रकाशन समिति,
332, स्कीम नं. 10, अलवर (राज.)

इस संबंध में दिनांक 11.6.2000 को दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर (मेरठ) में परम पूज्य **गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि, श्री ज्ञानमती माताजी** के पावन सान्निध्य में राष्ट्र स्तरीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें काफी ठोस प्रमाण एवं सुझाव जैन धर्म की प्राचीनता के संबंध में प्राप्त हुए हैं। उक्त संगोष्ठी में भाग लेने वाले सभी सहभागियों एवं सहयोगियों का भी मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। लेकिन मेरे मन में एक पीड़ा है कि ऐसा सब कुछ करने की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हुई है? आज भी कुछ इतिहासकार भगवान महावीर के निर्वाण के करीब 150 वर्ष पश्चात् 24 तीर्थंकरों की कल्पना किया जाना अपने लेखों एवं पत्रों में अंकित कर रहे हैं, ऐसा क्यों? कहीं हमारी भूल एवं अकर्मण्यता ही तो इसका कारण नहीं है कि हमने विगत लगभग 50 वर्षों में भगवान महावीर की ही जयन्ती मनाकर यह संदेश आमजन को नहीं दे दिया कि भगवान महावीर ही जैन धर्म के प्रवर्तक हैं? भगवान महावीर का 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव व्यापक स्तर पर मनाने का अर्थ भी तो कहीं ऐसा नहीं लगाया गया कि जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर ही हैं? अगले वर्ष मनाई जाने वाली 2600 वीं जयन्ती आमजन को जैन धर्म के बारे में क्या संदेश देगी? क्या भगवान महावीर की 2600 वीं जन्म जयंती समारोह को राष्ट्रीय स्तर पर मनाते समय हमें यह ध्यान नहीं रखना चाहिए कि भगवान महावीर के साथ-साथ जैन धर्म के अनुसार 24 तीर्थंकरों का भी प्रचार-प्रसार करें, उनके जीवन चरित्र पर प्रकाश डालें, साहित्य का प्रकाशन करें, आदि-आदि?

मेरी समग्र जैन समाज के तीर्थ क्षेत्रों के प्रबन्धकों से विनम्र प्रार्थना है कि -

1. प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म-स्थल पर एक राष्ट्रीय कार्यक्रम का आयोजन अवश्य किया जावे।
2. मूलनायक भगवान की जन्मतिथि के दिन प्रतिवर्ष जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया जावे। भगवान का पाण्डुक-शिला पर अभिषेक किया जावे एवं उसका समुचित प्रचार-प्रसार मीडिया-टी.वी., रेडियो, समाचार-पत्रों के माध्यम से किया जावे।
3. प्रत्येक तीर्थंकर के जीवन-चरित्र के संबंध में एक लघु पुस्तिका हिन्दी, अंग्रेजी व स्थानीय भाषा में प्रकाशित की जावे।
4. अतिशय क्षेत्रों पर भी ऐसे कार्यक्रम तैयार हों, जिन्हें इन्टरनेट पर प्रस्तुत किया जा सके। चम्पापुर क्षेत्र के पदाधिकारी इस संबंध में धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने अपने क्षेत्र का प्रचार इन्टरनेट पर प्रारंभ कर दिया है।

■ **खिल्लीमल जैन, एडवोकेट**
23, विकास पथ, अलवर (राज.)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार - 99 की घोषणा

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिह्न, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

1993 से 1998 के मध्य संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री (इन्दौर), प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर), प्रो. भागचन्द्र 'भास्कर' (नागपुर), डॉ. उदयचन्द्र जैन (उदयपुर), आचार्य गोपीलाल 'अमर' (नई दिल्ली) एवं प्रो. राधाचरण गुप्त (झांसी) को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

1999 के पुरस्कार हेतु प्रविष्टि भेजने की अन्तिम तिथि 30.6.2000 थी। प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन प्रो. अब्दुल असद अब्बासी, पूर्व कुमलपति - देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर की अध्यक्षता वाली एक त्रिसदस्यीय समिति द्वारा किया गया जिसमें पं. शिवचरनलाल जैन - मैनपुरी (अध्यक्ष - तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वत् महासंघ) तथा प्रो. नलिन के. शास्त्री (समायोजक - महाविद्यालय विकास परिषद, मगध वि.वि., बोधगया) सदस्य थे। उक्त निर्णायक मंडल की अनुशंसा के आधार पर प्रसिद्ध जैन विद्वान **डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, इन्दौर** को उनके अप्रकाशित शोध प्रबन्ध **'हिन्दी के जैन विलास काव्यों का उद्भव और विकास (वि.सं. 1520 से 1900 तक)'** पर प्रदान करने की घोषणा की गई है। पुरस्कार समर्पण समारोह फरवरी - मार्च 2001 में होना संभावित है।

वर्ष 2000 का पुरस्कार **'भगवान ऋषभदेव'** पर लिखित किसी मौलिक प्रकाशित / अप्रकाशित कृति पर दिया जायेगा। कृति में भगवान ऋषभदेव के साहित्य, इतिहास एवं पुरातत्त्व में उपलब्ध सभी सन्दर्भ मूलत: एवं प्रामाणिक रूप में संकलित होने चाहिये। वैदिक साहित्य के उद्धरणों के प्रामाणिक अनुवाद भी ससन्दर्भ दिये जाना अपेक्षित है। हिन्दी / अंग्रेजी भाषा में लिखित मौलिक प्रकाशित / अप्रकाशित एकल कृति निर्धारित प्रस्ताव पत्र के साथ 28 फरवरी 2001 तक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कार्यालय में प्राप्त होना आवश्यक है। प्रस्ताव पत्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय में उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

30.11.2000

गाजियाबाद में धर्म, आगम, विज्ञान विचार संगोष्ठी सम्पन्न

गाजियाबाद के कविनगर स्थित श्री पार्श्वनाथ दिग. जैन मन्दिर में **परमपूज्य मुनि श्री सौरभसागरजी महाराज** एवं **परमपूज्य मुनि श्री प्रबलसागरजी महाराज** के सान्निध्य में धर्म, आगम एवं विज्ञान विचार संगोष्ठी दिनांक 18-19-20 सितम्बर 2000 को सम्पन्न हुई, जिसमें डॉ. जयकुमार जैन-मुजफ्फरनगर ने 'अनर्थदण्ड व्रत की प्रासंगिकता', डॉ. अनुपम जैन-इन्दौर ने 'जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित गणित एवं आधुनिक गणित', डॉ. अशोक जैन-ग्वालियर ने 'अभक्ष्य-भक्ष्य भोजन', डॉ. अनिल जैन-अहमदाबाद ने 'क्लोनिंग और कर्मसिद्धान्त', डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'-बुरहानपुर ने 'जैन पूजा पद्धति', डॉ. कपूरचन्द्र जैन-खतौली ने 'जैन धर्म में पुद्गल द्रव्य', डॉ. एम. एम. बजाज-दिल्ली ने 'हिंसक पदार्थों का उपयोग एवं भूकम्प', डॉ. श्रेयांसकुमार जैन-बड़ौत ने 'सामायिक और ध्यान की प्रासंगिकता', डॉ. नलिन के. शास्त्री-बोधगया ने 'धर्म और विज्ञान', प्राचार्य श्री निहालचन्द जैन-बीना ने 'शिक्षाव्रतों की सामायिक भूमिका' विषयक आलेख पढ़े एवं प्रबुद्ध श्रोताओं द्वारा उठाई गई जिज्ञासाओं का समाधान किया। सभी विद्वानों का शाल, श्रीफल एवं प्रतीक चिन्ह प्रदानकर सम्मान किया गया। संगोष्ठी का संचालन डॉ. श्रेयांसकुमार जैन-बड़ौत एवं डॉ. नीलम जैन-गाजियाबाद ने किया।

'श्री पुष्प वर्षायोग समिति' ने संगोष्ठी की सफलता में महती भूमिका निभायी। जैन मिलन (महिला) एवं जयजिनेन्द्र बालिका संघ, वीर सेवा संघ द्वारा मंगलाचरण एवं रोचक भजन प्रस्तुत किये गये। डॉ. एम. एम. बजाज-नई दिल्ली द्वारा अहिंसा एवं मस्कुलर डिस्ट्राफी से सम्बन्धित 2 वीडियो कैसेट दिखायी गयीं जिससे लोगों की शाकाहार सम्बंधी आस्था दृढ़ हुई। इस अवसर पर आशीर्वाद स्वरूप मुनि श्री सौरभसागरजी महाराज ने कहा कि 'सभी को स्वयं के अस्तित्व को पहचानने की चेष्टा करनी चाहिये। पूर्वोपार्जित कर्मों को जलाने के लिये जिनपूजा परम इष्ट है। ज्ञान को आचरण में उतारकर हमें अपना भविष्य निर्मल बनाना चाहिये।'

संगोष्ठी की समीक्षा डॉ. नीलम जैन, सम्पादिका-जैन महिलादर्श ने की तथा इसे सफल बताया। इस अवसर पर अनेकान्त ज्ञान मन्दिर, बीना द्वारा ब्र. संदीप 'सरल' द्वारा पं. सुखमाल जैन-बरुआखेड़ा के सहयोग से हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रदर्शनी भी लगायी।

श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला में चिक्कबेट्टा महोत्सव

पंचम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी के चरण विश्राम, तपस्या एवं समाधि से पावन ऐतिहासिक क्षेत्र चिक्कबेट्टा (चन्द्रगिरि, श्रवणबेलगोला) तीर्थ का महोत्सव वर्तमान में प्रथम बार जगद्गुरु **परमपूज्य कर्मयोगी भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्ति स्वामीजी** के मार्गदर्शन एवं नेतृत्व में दिनांक 29 जनवरी से 6 अप्रैल 2001 तक विविध धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न होगा।

इस महोत्सव के अन्तर्गत जिनागम/जिनवाणी से संबंधित 108 ऐसे ग्रंथों का प्रकाशन किया जायेगा जो अनुपलब्ध या अप्रकाशित हैं। महोत्सव के उपलक्ष में ये ही 108 ग्रंथ कलश के रूप में लोकार्पित होंगे। जिनवाणी के विद्वान् सेवकों से निवेदन है कि अप्राप्य, अनुपलब्ध, प्रकाशित ऐसे ग्रंथों का, जिनका आप पुनः प्रकाशन उपयुक्त समझते हों, नाम, ग्रंथकर्ता का नाम और संभव हो तो एक प्रति महोत्सव समिति के अध्यक्ष **श्री नीरज जैन**, शांति सदन, कंपनी बाग, सतना (म.प्र.) फोन : 07672-34088 पर भिजवाने का कष्ट करें। यदि आपकी स्वयं की या अन्य किसी की भी कोई अप्रकाशित रचना/काव्य हों तो वह भी आप भेज सकते हैं। 7/8 ग्रंथों का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया है। विस्तृत जानकारी के लिये निम्न पते पर भी सम्पर्क कर सकते हैं -

श्री भरतकुमार काला
14/432, टैगोर नगर, विक्रोली (पू.),
मुम्बई-400083 फोन : 022-5743491

श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी - वाराणसी की ओर से अपने संस्थापक पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी की स्मृति में वर्ष 2000 के पुरस्कार के लिये जैनधर्म, दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य, समाज, संस्कृति, भाषा एवं इतिहास विषयक मौलिक, सृजनात्मक, चिन्तन, अनुसंधानात्मक शास्त्रीय परम्परा युक्त कृति पर पुरस्कारार्थ 4 प्रतियाँ 31 दिसम्बर 2000 तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में रु. 5,001/- की नगद राशि तथा प्रशस्ति पत्र दिया जायेगा। 1997 के बाद की प्रकाशित पुस्तकें ही इसमें सम्मिलित की जा सकती हैं। नियमावली निम्न पते पर उपलब्ध है -

डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'
संयोजक - श्री वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार समिति
श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी

वाग्भारती पुरस्कार हेतु नाम आमंत्रित

वाग्भारती पुरस्कार - 2001 हेतु 40 वर्ष तक के आर्षमार्गीय, युवा विद्वान, प्रवचनपटु, धर्म प्रभावना में संलग्न विद्वानों से/के नाम सादर आमंत्रित हैं जो दशलक्षण पर्व पर निर्लोभिता के साथ प्रवचनार्थ अवश्य जाते हों। नाम, आयु, पता, पर्व पर प्रवचनार्थ कहाँ - कहाँ गये व अन्य विवरण 31 दिसम्बर 2000 तक निम्न पते पर भेजें -

वाग्भारती, द्वारा डॉ. सुशील जैन
जैन क्लिनिक,
सिटी पोस्ट ऑफिस के सामने,
मैनपुरी – 205 001 (उ.प्र.)

वर्ष 1999 का पुरस्कार **पं. शैलेन्द्र जैन, बीना** तथा वर्ष 2000 का पुरस्कार **डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर** को प्रदान किया गया था। पुरस्कार में रु. 11,000/- की नगद राशि, सम्मान पत्र, प्रतीक चिन्ह आदि भेंट किया जाता है।

पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार – 2000 से सम्मानित

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर द्वारा 1995 में स्थापित पंचवर्षीय गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार - 2000 के निर्णय हेतु निम्नांकित पाँच सदस्यीय निर्णायक मंडल का गठन किया गया था -

1. ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन, हस्तिनापुर — अध्यक्ष
2. श्री अनिलकुमार जैन 'कागजी', दिल्ली — समाजसेवी - प्रायोजक
3. श्री जिनेन्द्र प्रसाद जैन, 'ठेकेदार', दिल्ली — समाजसेवी
4. प्रो. आर. आर. नांदगांवकर, नागपुर — पूर्व कुलपति, विशिष्ट विद्वान
5. डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर — निदेशक - सचिव

निर्णायक मंडल की दिनांक 15.7.2000 को दिल्ली में सम्पन्न बैठक में सर्वानुमति से जैनधर्म के उद्भट वरिष्ठ विद्वान तथा दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर की अकादमिक गतिविधियों से 1978 से अभिन्न रूप से सम्बद्ध पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी को गणिनी आर्यिका ज्ञानमती पुरस्कार - 2000 देने का निश्चय किया गया। इस पुरस्कार के अन्तर्गत रु. 1,00,000/- की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जाती है। यह पुरस्कार निकट भविष्य में समारोह पूर्वक प्रदान किया जायेगा, जिसके स्थान एवं तिथि की घोषणा यथासमय की जायेगी।

■ **कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन,** अध्यक्ष

जरूरतमन्दों के लिये टाइम्स फाउण्डेशन

टाइम्स फाउण्डेशन की स्थापना आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के काम में लगे गैर सरकारी संगठनों को मदद देने के लिये की गई है। फाउण्डेशन का विश्वास है कि किसी भी मजबूत और लोकतांत्रिक समाज के लिये ऐसा बहुमुखी विकास एक जरूरी आधार होता है। फाउण्डेशन इन गैर सरकारी संगठनों को अन्य सरकारों, संगठनों और व्यक्तियों से धन उपलब्ध कराने में मददगार के रूप में कार्य करेगा। फाउण्डेशन की कोशिश गैर सरकारी संगठनों के जरिये उन क्षेत्रों में सकारात्मक परिवर्तन लाने की है जो आज तक उपेक्षा का शिकार रहे हैं।

फाउण्डेशन का विश्वास है कि प्रगति के लिये आध्यात्मिक विकास का होना जरूरी है। आज हम तनाव से भरी जिस दुनिया में रह रहे हैं, उसमें आध्यात्मिक समझ ही हममें अपनी नैतिक विरासत के प्रति निष्ठा पैदा कर सकती है। स्कूल, मीडिया और सूचना तकनीक के नये साधनों के जरिये आध्यात्मिकता को आदमी और समाज के जीवन का जरूरी हिस्सा बनाया जा सकता है।

फाउण्डेशन अपने सहयोगियों के साथ मिलकर पारंपरिक कला - कौशल को प्रोत्साहित करने और सांस्कृतिक विरासत को बचाये रखने की कोशिश करेगा। फाउण्डेशन सरकारों, गैर सरकारी संस्थाओं और व्यक्तियों से दान लेगा। विशेषज्ञों की एक समिति उपयुक्त संगठनों और संस्थाओं का चुनाव करेगी जिन्हें यह धन सहायता राशि या कर्ज के रूप में उपलब्ध कराया जायेगा। इन परियोजनाओं पर काम किस तरह हो रहा है, इस पर फाउण्डेशन के अधिकारियों की नजर रहेगी।

श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित

दिगम्बर जैन समाज की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष के चुनाव प्रसिद्ध दिगम्बर जैन तीर्थ श्रीमहावीरजी पर दिनांक 24 सितम्बर को सम्पन्न हुए। इस प्रतिष्ठापूर्ण चुनाव में महासमिति के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल (इन्दौर) को 366 तथा महासमिति के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री राजेन्द्रकुमार ठोलिया (जयपुर) को 210 मत प्राप्त हुए। ज्ञातव्य है कि इस निर्वाचन में मात्र 863 मतदाता थे, जिनमें से 604 ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। महिला मध्यांचल एवं विदेशी सदस्यों के प्रतिनिधियों द्वारा डाले गये 26 मत सम्मिलित नहीं किये जाने के बावजूद 156 मतों के भारी बहुमत से श्री प्रदीपजी की जीत यह दर्शाती है कि उन्हें सभी वर्गों एवं अंचलों का स्नेह एवं आशीर्वाद प्राप्त हुआ है। 2 मत निरस्त कर दिये गये। इस प्रकार श्री प्रदीपजी कासलीवाल भारी बहुमत से 2 वर्ष हेतु पुन: राष्ट्रीय अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुए।

दिनांक 5.11.2000 को इन्दौर में सम्पन्न महासमिति कार्यकारिणी की बैठक में महामंत्री के पद पर श्री माणिकचन्द जैन पाटनी (इन्दौर) तथा कोषाध्यक्ष के पद पर श्री कांतिचन्द्र जैन बड़जात्या (दिल्ली) का सर्वानुमति से चयन किया गया। कार्यकारिणी की ही बैठक में अध्यक्ष महोदय ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर श्री एम.के. जैन (दिल्ली) को अतिरिक्त महामंत्री एवं अर्हत् वचन के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन को महासमिति पत्रिका का प्रधान सम्पादक मनोनीत किया। महासमिति की नवनिर्वाचित टीम को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की बधाई।

डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सम्मान

डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, निदेशक - वृन्दावन शोध संस्थान, मथुरा को उत्तरप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रायबरेली (उ.प्र.) में सम्पन्न वार्षिक अधिवेशन (30.9.2000) के अवसर पर **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सम्मान** से सम्मानित किया गया। उन्हें यह सम्मान आलोचना साहित्य में विशिष्ट योगदान हेतु दिया गया। ज्ञानपीठ परिवार की ओर से बधाई।

अर्हत् वचन पुरस्कार (वर्ष 11 - 1999) की घोषणा

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मौलिक एवं शोधपूर्ण आलेखों के सृजन को प्रोत्साहन देने एवं शोधार्थियों के श्रम को सम्मानित करने के उद्देश्य से वर्ष 1990 में अर्हत् वचन पुरस्कारों की स्थापना की गई थी। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष अर्हत् वचन में एक वर्ष में प्रकाशित 3 श्रेष्ठ आलेखों को पुरस्कृत किया जाता है।

वर्ष 1999 के चार अंकों में प्रकाशित आलेखों के मूल्यांकन के लिये एक त्रिसदस्यीय निर्णायक मण्डल का निम्नवत् गठन किया गया था -

1. **प्रो. आर. आर. नांदगांवकर, पूर्व कुलपति,**
   1472, हसन बाग रोड़, न्यू नंदनवन लेआऊट, नागपुर (महाराष्ट्र)
2. **श्री सुरेश जैन,** I.A.S.
   30, निशात कालोनी, भोपाल (म.प्र.)
3. **डॉ. नीलम जैन, प्रधान सम्पादिका - जैन महिलादर्श,**
   C/o. श्री यू. के. जैन, सेन्ट्रल ऑफ इण्डिया,
   पो. मीरगंज जि. बरेली (म.प्र.)

निर्णायकों द्वारा प्रदत्त प्राप्तांकों के आधार पर निम्नांकित आलेखों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार हेतु चुना गया है। पुरस्कृत लेख के लेखकों को क्रमशः रुपये 5000/-, 3000/- एवं 2000/- की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र एवं स्मृति चिन्ह से निकट भविष्य में सम्मानित किया जायेगा।

प्रथम पुरस्कार : कालद्रव्य : जैन दर्शन और विज्ञान, **11** (3), जुलाई 99, पृ. 23 - 32
कुमार अनेकान्त जैन, शोध छात्र, जैन विश्वभारती संस्थान, लाड़नूं - 341 306

द्वितीय पुरस्कार : जैन समाज में नारी की हैसियत, 11 (2), अप्रैल 99, पृ. 9 - 18
आचार्य गोपीलाल अमर, अमरावती, सी - 2/57, भजनपुरा, दिल्ली - 110 053

तृतीय पुरस्कार : णमोकार महामंत्र - साधना के स्वर : एक अध्ययन, 11 (3), जुलाई 99, पृ. 49 - 52
स्व. डॉ. जयचन्द शर्मा, निदेशक - श्री संगीत भारती, शोध विभाग, बीकानेर - 334 007

पुरस्कार समर्पण समारोह फरवरी - मार्च 2001 में इन्दौर में आयोजित किया जायेगा।

देवकुमारसिंह कासलीवाल — अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन — मानद सचिव

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

डॉ. मनोरमा जैन को श्रमण पुरस्कार

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी द्वारा प्रकाशित एवं **डॉ. (श्रीमती) मनोरमा जैन** (धर्मपत्नी डॉ. सुदर्शनलाल जैन, प्राध्यापक - संस्कृत, काशी हिन्दू विद्यापीठ) द्वारा लिखित 'पञ्चाध्यायी में प्रतिपादित जैनदर्शन' नामक शोध - प्रबन्ध पर उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान ने वर्ष 1998 का पाँच हजार रुपये का श्रमण पुरस्कार प्रदान कर डॉ. (श्रीमती) जैन का सम्मान किया है।

ज्ञातव्य है डॉ. (श्रीमती) जैन ने डा. कमलेशकुमार जैन के निर्देशन में शोध - प्रबन्ध लिखकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से सन् 1996 में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।

भगवान महावीर 2600 वाँ जन्मोत्सव

भगवान महावीर का 2600 वाँ जन्मोत्सवराष्ट्रीय स्तर पर मनाने हेतु भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री अटलबिहारी बाजपेयी की अध्यक्षता में 59 सदस्यीय राष्ट्रीय समिति गठित की गई है। इस कमेटी के द्वारा लिये गये निर्णयों को द्रुत गति से कार्यान्वित करने हेतु केन्द्रीय पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री की अध्यक्षता में एक 9 सदस्यीय क्रियान्वयन समिति भी गठित कर दी गई है। ज्ञातव्य है कि दिगम्बर एवं श्वेताम्बर समाज ने मिलकर संयुक्त रूप से सामाजिक स्तर पर एक अन्य समिति श्री दीपचन्द गार्डी की अध्यक्षता में गठित की है, जिसकी कार्याध्यक्ष श्रीमती इन्दु जैन तथा महामंत्री साहू रमेशचन्द जैन एवं एम.एल. आच्छा हैं। इस समित ने राष्ट्रीय समिति के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए अपने कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं की सूची तैयार की है। यह सूची अत्यंत व्यापक, महत्वाकांक्षी एवं सुविचारित है।

प्रसिद्ध हिन्दीसेवी श्री पुरुषोत्तम जैन एवं श्री रवीन्द्र जैन पुरस्कृत

युनेस्को द्वारा आयोजित तृतीय सहस्राब्दी विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर पंजाब के प्रसिद्ध हिन्दीसेवी श्री पुरुषोत्तम जैन एवं श्री रवीन्द्र जैन को अन्य हिन्दीसेवियों के साथ राजेन्द्र सभागार, दिल्ली में डॉ. सुधाकर पाण्डेय के मुख्य आतिथ्य में **'राष्ट्रीय हिन्दीसेवी सहस्राब्दी सम्मान'** से सम्मानित किया गया। इस सम्मेलन का उद्घाटन केन्द्रीय गृहमंत्री माननीय श्री लालकृष्णजी आडवानी ने 14 सितम्बर 2000 को किया। सम्मेलन के संयोजक डॉ. प्रियरंजन त्रिवेदी थे।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से जैन जगत के प्रसिद्ध लेखकद्वय को हार्दिक बधाई। आप दोनों महानुभाव पंजाब - हरियाणा प्रांत में जैनधर्म के प्रचार - प्रसार हेतु विशेष सचेष्ट हैं।

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के प्रवचन एवं अध्यापन की सी.डी.

संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार', 'तत्त्वार्थसूत्र', 'प्रमेयरत्नमाला', 'राजवार्तिक', 'न्यायदीपिका', 'वृहद द्रव्यसंग्रह', 'समयसार' आदि ग्रंथों पर दिये गये व्याख्यानों की सचित्र एवं मधुर संगीतमय सी.डी. तैयार की गई है साथ ही अन्य अनेक विषयों पर प्रवचनों की सी.डी. भी तैयार की जा रही है। सी.डी. निर्माण करने के बारे में अधिक जानकारी तथा सी.डी. प्राप्त करने हेतु सम्पर्क -

ब्र. अजित 'वीर', दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584 म. गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

हमारे प्रमुख प्रकाशन

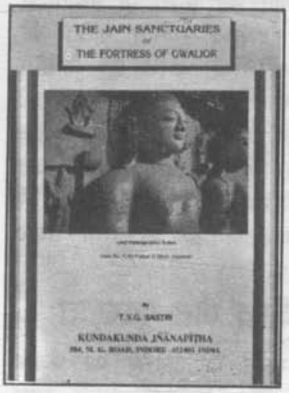

THE JAIN SANCTUARIES OF THE FORTRESS OF GWALIOR
By - **Dr. T.V.G. SASTRI**
- Price -
Rs. 500.00 or
U.S.$ 50.00
I.S.B.N. 81-86933-12-3

मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य
- लेखक -
पं. नाथूलाल जैन शास्त्री
मूल्य - रु. 70.00
I.S.B.N. 81-86933-14-X

JAIN DHARMA - VISHWA DHARMA
By - **Pt. Nathuram Dongariya Jain**
Translated by C.L. Bandi
Price - Rs. 20.00
I.S.B.N. 81-86933-15-8

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित अन्य साहित्य

पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.
* 1. जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81-86933-00-x
2. बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-01-8
3. बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6
4. बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4
5. बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2
6. नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0
7. नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9
8. नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7
9. नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5
10. नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3
11. नैतिक शिक्षा, छठा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7
12. नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5
13. जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-13-1

* अनुपलब्ध

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452001

एक चिराग जो सहसा बुझ गया!

श्री नवीन जैन सेठी का आकस्मिक निधन

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म/तीर्थ संरक्षिणी) महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जैन सेठी के ३६ वर्षीय प्रिय ज्येष्ठ युवा सुपुत्र श्री नवीन जैन सेठी का १० नवम्बर २००० को सीतापुर के निकट शाहजहाँपुर से सीतापुर आते समय हृदयविदारक सड़क दुर्घटना में प्रातः ८ बजे दुःखद निधन हो गया। श्री नवीन जैन किसी आवश्यक कार्य से एक दिन पूर्व दिल्ली गये थे। दिल्ली से सीतापुर आने हेतु वे शाहजहाँपुर उतरकर एक टैक्सी से सीतापुर जा रहे थे कि थाना रामकोट क्षेत्र में गाँव नेरी के पास खड़ी ट्रक में यह टैक्सी पीछे से जा भिड़ी जिससे टैक्सी में सवार श्री नवीन जैन सहित चार लोगों की मृत्यु हो गई। आप अपने पीछे पत्नी, दो पुत्र सहित अन्य संबंधियों का भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं।

स्व. श्री नवीन सेठी का जन्म ७ नवम्बर १९६४ को तिनसुकिया (आसाम) में भारत विख्यात स्वनामधन्य स्व. श्री हरकचन्दजी सेठी के यशस्वी सुपुत्र श्रावकरत्न श्री निर्मलकुमारजी सेठी के यहाँ हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा सिल्चर में सम्पन्न हुई। सन् १९७२ में आठ वर्ष की उम्र में वे सीतापुर आ गये थे। यहाँ के राजकीय इन्टर कालेज में उन्होंने कक्षा १२ तक शिक्षा प्राप्त की। सन् १९८३ में क्रिश्चियन कालेज, लखनऊ से उन्होंने बी.कॉम. की उपाधि प्राप्त की तथा १ वर्ष तक मैसूर में रहकर उन्होंने CFTRI में फ्लोर मिल तकनीक का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

आपका विवाह आगरा के सुप्रसिद्ध व्यवसायी एवं समाजसेवी **श्री निरंजनलालजी बैनाड़ा** के अनुज **श्री पन्नालालजी बैनाड़ा** की सुपुत्री अनु जैन के साथ हुआ था। आपके दो सुपुत्र मेधिर (१० वर्ष) एवं अविचल (६ वर्ष) हैं। आप अपने फ्लोर मिल्स इत्यादि के व्यवसाय का कुशलतापूर्वक संचालन कर रहे थे। धार्मिक, सामाजिक गतिविधियों में भी आप परोक्ष रूप से पूर्ण सहयोग प्रदान करते थे।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार श्री वीरप्रभु से दिवंगत आत्मा की शांति व सद्गति की कामना करता हुआ शोक संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक शोक संवेदना प्रकट करता है।

वयोवृद्ध ब्रह्मचारी श्री रूपचन्दजी गंगवाल का निधन

इन्दौर। श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, तुकोंगज - इन्दौर के वयोवृद्ध ब्रह्मचारी श्री रूपचन्दजी जैन गंगवाल का दिनांक २६ अगस्त २००० को निधन हो गया। वे ८० वर्ष के थे। आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज ने उन्हें अंतिम धर्मोपदेश दिया। संस्थाध्यक्ष श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल ने उनके निधन पर शोक प्रगट किया।

आश्रम से निकली शवयात्रा में अनेक धर्मालुजन सम्मिलित हुए। जूनी इन्दौर स्थित मुक्तिधाम पर अन्त्येष्टि के पश्चात सम्पन्न शोक सभा में सर्वश्री पं. रतनलालजी शास्त्री, ब्र. अनिलजी, ब्र. लखमीचन्दजी, ब्र. सुनीलजी, ब्र. हुकमचन्दजी, डॉ. के. एल. जैन, डॉ. महेन्द्रकुमार जैन, श्री सूर्यपाल जैन, श्री नरेन्द्र जैन व श्री जयसेन जैन आदि ने श्रद्धांजलि अर्पित की।

■ **जयसेन जैन**

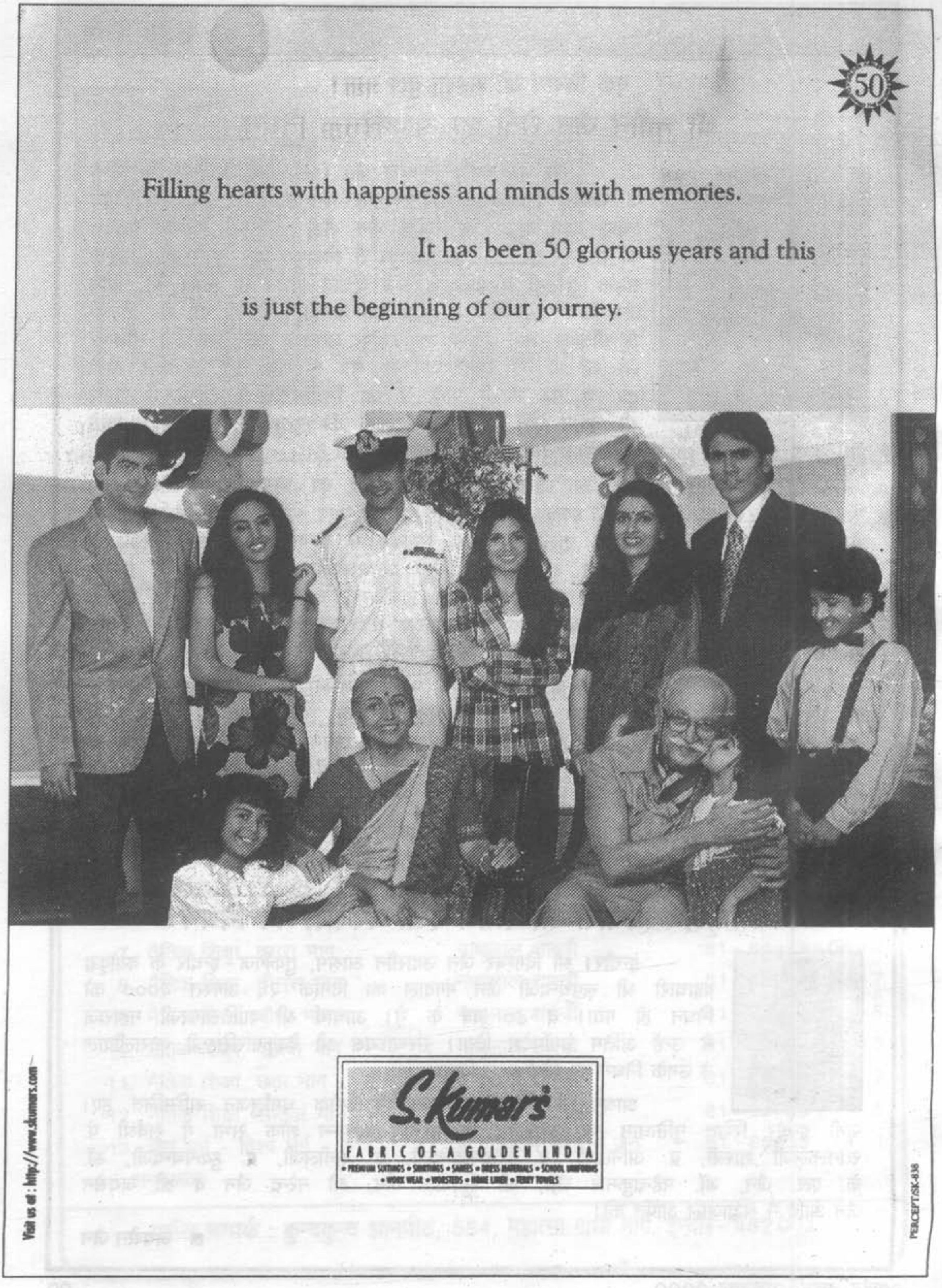
50
Filling hearts with happiness and minds with memories.
It has been 50 glorious years and this
is just the beginning of our journey.
S. Kumars
FABRIC OF A GOLDEN INDIA
• PREMIUM SUITINGS • SHIRTINGS • SAREES • DRESS MATERIALS • SCHOOL UNIFORMS
• WORK WEAR • WORSTEDS • HOME LINEN • TERRY TOWELS
Visit us at : http://www.skumars.com
PERCEPT/SK-838

श्री त्रिलोकचन्दजी जैन का दुःखद निधन

अर्हत् वचन के सम्पादक, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के सचिव तथा गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ, हस्तिनापुर के निदेशक, गणितज्ञ डॉ. अनुपम जैन के पूज्य पिता **श्री त्रिलोकचंद जी जैन** का 4 अक्टूबर 2000 को राजगढ़ (ब्यावरा) में आकस्मिक निधन हो गया।

धार्मिक प्रवृत्ति के धनी स्व. श्री जैन क्रॉकरी के थोक व्यवसायी थे तथा अपने व्यवसाय से संबंधित कार्य से ब्यावरा से राजगढ़ गये हुए थे। राजगढ़ से खिलचीपुर जाते समय बस-ट्रक दुर्घटना में उनका दुःखद निधन हो गया।

बुलंदशहर (उ.प्र.) के छतारी ग्राम में 10 मई 1936 को जन्मे स्व. श्री त्रिलोकचंद जैन प्रारंभ से ही प्रतिभाशाली एवं उद्यमशील रहे। अपने पिता श्री रेवतीप्रसाद जी जैन के शीघ्र ही निधनोपरांत उन्होंने ही अपने छोटे भाई-बहिनों के विवाह एवं समस्त पारिवारिक उत्तरदायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया। सन् 1958 में अपना जन्म स्थान छोड़कर ग्वालियर एवं फिरोजाबाद में नौकरी की। पश्चात् स्वयं का ग्लास एवं क्रॉकरी व्यवसाय किया। अपने प्रतिभावान एकमात्र सुपुत्र डॉ. अनुपम जैन के म.प्र. शासकीय महाविद्यालयीन सेवा में प्रवेश के पश्चात् 1990 में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती इन्द्रा जैन सहित ब्यावरा (म.प्र.) आ गये। इसके पूर्व उन्होंने अपने सुपुत्र सहित चारों सुपुत्रियों (उपमा, सरिता, संध्या व शालिनी) के विवाह भी सम्पन्न कर अपने प्रमुख दायित्व से मुक्ति पा ली थी। किन्तु अपनी स्वाभिमानी व स्वावलम्बी वृत्ति के कारण, शारीरिक प्रतिकूलताओं के बावजूद वे जीवन की अंतिम श्वांस तक संघर्षरत रहे। निश्चित ही यह उनके पुण्योदय का ही सुफल था कि वर्ष 1995 में उन्होंने अपने सुपुत्र डॉ. अनुपम जैन को, जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में, परमपूज्य, गणिनीप्रमुख, आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के नाम से घोषित प्रथम **गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार** (एक लाख रु. एवं प्रशस्ति) से सम्मानित होते हुए देखा। इस सुअवसर पर उन्होंने अपने समस्त संबंधी व आत्मीयजनों को हस्तिनापुर आमंत्रित कर उनका यथोचित सम्मान भी किया।

ब्यावरा (राजगढ़) में 5 अक्टूबर 2000 को उनका अंतिम संस्कार हुआ जहाँ पुत्र डॉ. अनुपम जैन ने मुखाग्नि दी। स्थानीय जैन समाज के अतिरिक्त अनेक प्राध्यापक, समाजसेवी एवं जैनेतर बंधु भी उनकी अंत्येष्टि में सम्मिलित हुए। तीसरे का उठावना 7 अक्टूबर को डॉ. अनुपम जैन के निवास "ज्ञानछाया" डी-14, सुदामानगर, इन्दौर पर हुआ जिसमें बड़ी संख्या में दिग. जैन महासमिति एवं दि. जैन महिला संगठन के पदाधिकारी, जैन समाज के वरिष्ठजन, प्राध्यापकगण एवं आत्मीयजन भी सम्मिलित हुए। देश-विदेश से अनेक शीर्षस्थ मनीषी विद्वान एवं विभिन्न संस्थाओं से भी संवेदना पत्र प्राप्त हुए और निरंतर प्राप्त हो रहे हैं। देश की अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भी उनको श्रद्धांजलि प्रकाशित की जा रही है।

दिवंगत आत्मा को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि एवं शोक संतप्त परिवारजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त की गई।

जयसेन जैन
सम्पादक - सन्मति वाणी

I.S.S.N. 0971 - 9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार - पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199 / 88

स्वामी श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स,** सिटी प्लाजा, म.गा. मार्ग, इन्दौर फोन : 538283 द्वारा मुद्रित।

मानद सम्पादक - **डॉ. अनुपम जैन**